
पल्लवी प्रकाशन



जगदीश प्रसाद मण्डल
एक जीवनी

गजेन्द्र ठाकुर

हिन्दी अनुवाद

रामेश्वर प्रसाद मण्डल

जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी (हिन्दी में) : रामेश्वर प्रसाद मण्डल पल्लवी प्रकाशन

जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी

जगदीश प्रसाद मण्डल- एकटा बायोग्राफी

(मैथिली)

गजेन्द्र ठाकुर

जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी

हिन्दी अनुवाद

रामेश्वर प्रसाद मण्डल



पल्लवी प्रकाशन

बेरमा/निर्मली

JAGDISH PRASAD MANDAL : EK JEEVANEE

Hindi Translation of the Maithili biography of Sh Jagdish Prasad Mandal "Jagdish Prasad Mandal- Ekta Biography" -Original Maithili by Sh. Gajendra Thakur. Hindi translation by Sh. Rameshwar Prasad Mandal

ISBN: 978-93-93135-40-7
दाम : 251/- (भा.रू.)

प्रथम संस्करण : 2023

प्रकाशक : पल्लवी प्रकाशन
तुलसी भवन, जे.एल.नेहरू मार्ग, वार्ड नं. 06, निर्मली
जिला- सुपौल, बिहार : 847452

वेबसाइट : http://pallavipublication.blogspot.com
ई-मेल : pallavi.publication.nirmali@gmail.com
मोबाइल : 6200635563; 9931654742

प्रिन्ट : मानव आर्ट, निर्मली (सुपौल)
आवरण : श्रीमती पुनम मण्डल, निर्मली (सुपौल), बिहार : 847452
अक्षर संयोजन : डॉ. उमेश मण्डल
फोण्ट सोर्स : https://fonts.google.com/,
https://github.com/virtualvinodh/aksharamukha-fonts

सेवा समर्पण

जिन्दगी की कड़ी में और परीक्षा की घड़ी में समुद्र मंथन से उत्पन्न धनवन्तरी जैसे वैद्य भी आते हैं, जिनके हाथों में अमृत कलश होता है। इस कड़ी में मुझ जैसा मयटुअर शिशु की जान अपना अमृतमय दूध पीलाकर जिसने बचाई और प्यार-दुलार से पाला-पोसा उस बुआ को, दादा- स्व. भरोसी मण्डल को, मुंशी जी के नाम से तथा काठ के इंजीनियर के नाम से चर्चित पिता- स्व मुंशी सुन्दर लाल मण्डल को, माता- स्व. राजो देवी को, मामा- स्व. मौजे लाल मण्डल (सभी), सिसौनी को, राम के स्वरूप में अग्रज- श्री रामस्वरूप मण्डल, पूर्व वार्ड सदस्य (समाज-सेवी) को, सीता स्वरुपा भाभी- श्रीमती शोभा देवी को, मेरी अर्द्धांगिनी व मेरी सखी- श्रीमती पद्मावती देवी (समाज-सेवी) को, गुंगी को बोल और नेत्रहीन को ज्योति देने वाले इंसानों को तथा गिरे समाज को उठाने की दिशा में कार्यरत संस्था- प्रगतिशील बौद्धिक समाज निर्मली को तथा उपले की काली कोठली से लेकर सुन्दर और रंगीन भवन बनानेवाली मेहनतकश महिलाओं आदि को आदर्श 'जीवनी' का यह सेवा प्रसून सादर समर्पित...

- रामेश्वर प्रसाद

मेरे जैसा कौन है बकलेल
बाल-बच्चा मिल भैंसी पाला
प्रमुख, नथुनी सिंह और दारोगा
आकर खुटा पर से ले गया खोल
मेरे जैसा कौन...
ज्योंही जेल के अन्दर आया
पीपल के नीचे गाजा लगाया
जमेदार आकर
डंडा-बेड़ी ठोक देल।
मेरे जैसा कौन...
पसीना बहाकर खेती किया
तुलसी-फूल व कनकजीर
खोह में से हीं
सरुप सिंह डौढ़ा में लिया तौल।
मेरे जैसा कौन...
और तो और कवि-कोकिल
महाकवि विद्यापति को
बहुत पहले ही छीन लेल।
मेरे जैसा कौन है बकलेल ।

इसी पुस्तक से..

सन सैंतालीस...

स्वतंत्र भारत का तिरंगा झण्डा फहरा रहा था।

मगर कम्युनिस्ट पार्टी का मानना था कि भारत स्वतंत्र नहीं हुआ है।

असली स्वतंत्रता मिलना अभी शेष है...

मिथिला का एक गाँव...

जन्म हुआ था एक बालक का... उसी वर्ष...

उस स्वतंत्र या अस्वतंत्र भारत में...

वंचितों के लिए संघर्ष में मिले स्वतंत्र भारत का या अस्वतंत्र भारत का जेल...

आज बेरमा में पाँच-दस बीघा से अधिक जोत किसी को नहीं। उस गाँव में जीवित है आज भी किसानी आत्मनिर्भर संस्कृति...

पुरोहितवाद पर ब्राह्मणवाद का एकछत्र राज्य की जहाँ हुई समाप्ति...

संघर्ष की समाप्ति के पश्चात् जिनकी लेखनी मैथिली साहित्य में ले आई पुनर्जागरण...

जगदीश प्रसाद मण्डल- एकटा बायोग्राफी

(मैथिली) गजेन्द्र ठाकुर द्वारा

अनुवाद

जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी

अनुवाद रामेश्वर प्रसाद मण्डल द्वारा

आत्म -कथा, श्री जगदीश प्रसाद मण्डल-

सत्य, अहिंसा, यथार्थ -समस्या पे

जो देते हैं उपदेश

साहित्य-रण में शतक लगाकर;

गढ़ते समाज-परिवेश ।।

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

जीवनी के लिए तो गद्य का प्रयोग होता है पर यदि जीवन श्रीराम का हो तो वाल्मीकि पद्य का प्रयोग करते हैं, क्योंकि उन्हें अयोध्या की छटा भी दिखलानी है और असीम समुद्र का विस्तार भी दिखाना है। परन्तु उसके अनुवादक कभी उसे गद्य या पद्यमे सामर्थ्यानुसार अनूदित करते हैं, सामर्थ्य मात्र अनुवादक का ही नहीं वरन् पाठक का भी। और अनुवाद केवल एक भाषा से दूसरे भाषा में ही नहीं होता वरन् एक ही भाषा में एक विधा से दूसरे विधा में भी होता है।

काम में मग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर क्रौंच को शिकारी ने बाण से मार डाला और उसकी रोती हुई मादा के विलाप को देखकर वाल्मीकि बोल पड़े-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शास्वती समा।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्॥

और इससे ही विश्व के सर्वश्रेष्ठ रामायण महाकाव्य का प्रारम्भ माना जाता है।

रामेश्वर प्रसाद मण्डल जी द्वारा किये गये अनुवाद में पद्य का प्रवेश अनुवादक द्वारा जगदीश प्रसाद मण्डल जी के चरित्र में प्रवेश कर जाने के ही कारण हुआ है, और वह पाठ के अनुवाद के कारण किसी सम्भावित क्षति की क्षतिपूर्ति करता प्रतीत होता है।

-गजेन्द्र ठाकुर

वसन्त कुञ्ज, नई दिल्ली

17 मार्च 2023

अपनी बात

'जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी' हिन्दी में लिखते हुए मुझे अति गौरव महसूस हो रहा है। मैं ऐसे महान हस्ती की जीवनी लिख रहा हूँ जो महान रचनाकार-उपन्यासकार, कवि, नाटककार और कथाकार हैं। 'पंगु' उपन्यास के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से इन्हें नवाजा गया है। इन्होंने सौ से अधिक पुस्तकें लिखकर मिथिला-मैथिली को गौरवान्वित किया है। ये सही अर्थ में मानवता के सच्चे पुजारी हैं। इनके द्वारा किया गया कार्य सराहनीय है। ऐसे प्रसिद्ध लोकप्रिय रचनाकार की जीवनी लिखना गौरव की बात नहीं तो और क्या?

इससे पहले भी मैंने इनके द्वारा रचित एवम् साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत पंगु उपन्यास का भी हिन्दी रूपान्तरण किया है जो इनके द्वारा लिखित पुस्तकों का प्रथम हिन्दी रूपान्तरण है। इस प्रकार मुझे अन्य भाषा में (हिन्दी में) अनुवाद करने का प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

मैथिली में लिखित 'जगदीश प्रसाद मण्डल- एकटा बायोग्राफी' लेखक श्री गजेन्द्र ठाकुर का हिन्दी रूपान्तरण 'जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी' लेखक रामेश्वर प्रसाद मण्डल यह पुस्तक जो आपके हाथ में है, मैंने इसे कठिन परिस्थिति में रूग्णावस्था में लिखी है। परन्तु इसे लिखते वक्त मेरा मनोबल आसमान छुने लगता था। डॉ. उमेश मण्डल जी के सहयोग सहानुभूति उत्प्रेरक का काम करता रहा और मैं अपनी अस्वस्थता को भूल कर लिखता चला गया। मुझे सुकून इसलिए मिलता था कि मैं एक महान व्यक्ति की जीवनी एवं कार्य शैली को निखार रहा था और एक नेक कार्य कर रहा था। मैं गद-गद हूँ। बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक एवम् सम्पादक ने मुझे लत्ती, फूल और गुच्छे

दिये थे, जिन्हे उचित स्थानों पर रखकर, सजाकर, गढ़कर अलंकृत कर मैंने पुस्तक की आकृति देने का प्रयास किया है। इसके लिए प्रिय गजेन्द्र जी को मन से बधाई देता हूँ। इस पुनीत कार्य को सफलता पूर्वक समापन में डॉ. उमेश मण्डल जी द्वारा जुटाये गये सबुत एवं तथ्य मणि-कांचन संयोग है। मैं इन्हें दिल से बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ।

विचार सन्देश एवम् उपदेश प्रचार-क्षेत्र एवम् इसकी दूरी पर निर्भर करता है। ज्यों-ज्यों क्षेत्र बढ़ता जाता है त्यों-त्यों ये बढ़ते जाते हैं। पाठको की संख्या बढ़े, अधिक दूर तक प्रचार हो तथा अधिक लोगों के हाथों में पुस्तक जा सके, अधिक लोग श्रवण कर सके और लाभान्वित हो सके। इसके लिए अन्य भाषा-माध्यम जरूरी है। इसलिए मैं मैथिली प्रेमी होकर भी मैथिली भाषा के क्षेत्र-विस्तार के लिए मैथिली से हिन्दी में अनुवाद करता हूँ। हिन्दी भाषा का पाँव आज विदेशी धरती पर भी जम गया है जैसे, मॉरिशस, फिजी, त्रिनिदाद, युगांडा, नेपाल, जर्मनी, अमेरिका, सिंगापुर, सा. अफ्रिका आदि देशों में। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मैथिली का भी सिक्का दूर-दूर तक जम सके।

मैंने आदरणीय श्री जगदीश प्रसाद मण्डल जी से कई बार मुखातिब होकर उनके विलक्षण विचार का रसास्वादन किया है, उनकी जीवनी को सुना है, उद्गार को परखा है ताकि सबुत जुटाकर पुस्तक में सत्यता दर्शा सकूँ। मैं उन्हे सादर प्रणाम करता हूँ।

कीमती समय देकर तथ्यों एवम् सबुतों को जुटाकर मेहनत से लिखी गई यह पुस्तक मानवोचित व्यवहार के लिए एवम् प्रगति के लिए मील का पत्थर साबित होगी। मुझे आशा एवम् विश्वास है।

यह केवल पुस्तक ही नहीं है, विचार बिम्ब है, एक विशिष्ट मानव के अनुभवों का दर्पण है, भिन्न-भिन्न दर्शनीय स्थानों का झरोखा है, संघर्ष, साहस और त्याग की मंजूषा है। इस वक्त मुझे अपनी एक कविता की पंक्ति याद आ

रही है-

“मानव से कैसे देवतुल्य
है बनते कैसे तुच्छ से पूज्य
किरणों की रश्मि किरणपुंज
मानव में कैसे मानव-मूल्य..।” *(एकता कविता से)*

यह पुस्तक सुधी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। आप ऐसे महान साहित्यकार एवम् करतार को जान सकेंगें जो आज की तिथि में साहित्य-रण में शतक लगाकर क्रीच पर कायम है- पुस्तकों का पहाड़-संदेश-उपदेश का भण्डार के साथ। नि:सन्देह जगदीश बाबू मानवीय सागर में दिशाहीन नाविकों के लिए दिशा सूचक कम्पास सुई हैं।

इस पुस्तक को लिखने के लिए, इसे उचित साँचे में ढालने के लिए तथा आकार और सही रूप देने के लिए मुझे प्रेरित करनेवालों एवम् सहयोग-सलाह देनेवालों की लम्बी सूची हैं, पुरस्कृत युवा लेखक एवं पल्लवी प्रकाशन निर्मली के व्यवस्थापक डॉ. उमेश मण्डल जी, ख्यातिप्राप्त रचनाकार पुरस्कृत उपन्यासकार मैथिली-शिल्पी मिथिलांचल विभूति आदरणीय श्री जगदीश प्रसाद मण्डल जी, हिन्दी के विख्यात सुयोग्य प्रोफेसर श्री धीरेन्द्र कुमार राय जी, बहुमुखी प्रतिभा के धनी सम्पादक एवं लेखक गजेन्द्र ठाकुर जी, श्रीमती प्रीति ठाकुर जी हिन्दी के मर्मज्ञ पूर्व पुस्तकालयाध्यक्ष गुरुदेव रामजी प्रसाद मण्डल जी, सहयोगी शिक्षक भरत मण्डल जी, जगदीश मण्डलजी, कथाकार एवम् समीक्षक दुर्गानन्द मण्डलजी, रचनाकार राजदेव मण्डलजी, लेखक राम विलास साहुजी, लालदेव कामतीजी, श्री नन्द विलास राय जी और पल्लवी प्रकाशन के आवरण दात्री श्रीमती पुनम मण्डल एवम् उदीयमान महिला लेखिका विदुषी सुश्री पल्लवी मण्डल तथा पल्लवी प्रकाशन के सभी कार्यकारीगण के प्रति आभार प्रकट करता हूँ तथा बधाई और धन्यवाद ज्ञापण करता हूँ। छोटों को आशीष एवं शुभकामनाएँ देता हूँ।

बन्धुवर! त्रुटि तो त्रुटि है। कोई भी मानव पूर्ण नहीं हो सकता। मुझसे भी त्रुटियाँ हुई होगीं, क्षमा-याचना है। वैसे, भाषा में त्रुटि स्वाभाविक है, क्योंकि बर्तनी, शब्द, वाक्य आदि भाषा के विचार हैं, जिनसे होकर भाषा को गुजरना पड़ता है। मैं एक बिम्ब प्रस्तुत करता हूँ।

बर्तनी, शब्द और वाक्य में
भाषा भाव के ताल में
कभी मध्य तो कभी तार
कभी आ आजे मंद्र सप्तक में
विचार में विकृति आती हैं।
लेखनी विचल हो जाती है।।

आप अपना बहुमूल्य सुझाव एवम् विचार अवश्य देगें। आपका सुझाव मेरे लिए उत्प्लावन बल जैसा कार्य करेगा। आप से मेरा यह भी अनुरोध है कि मैं भूले-बिसरे-अधूरे कार्यों को पूरा कर लेने का प्रयत्न करूँगा...।

सादर नमन... सधन्यवाद..

आपका ही

- रामेश्वर प्रसाद मण्डल

मो. 9973541877

सुन्दर भवन, निर्मली
20 सितम्बर 2022

शुभ-घड़ी का संकेत, स्वतंत्रता का शंखनाद होने ही वाला था। अंग्रेज भारत से जाने ही वाला था। अपना बोरिया-बिस्तर बाँध लिया था। भारत में आजादी की सुखद एवम् सुवासित वयार बहने ही वाली थी। ऐसे आलम में एक सौम्य और सुशील बालक का जन्म होता है, वे हैं, जगदीश प्रसाद मण्डल। इनका जन्म 5 जुलाई 1947 ईस्वी को मधुबनी जिले के बेरमा गाँव में हुआ। वे बचपन से ही एक होनहार बालक के रूप में जाने जाते रहें। आज भी प्रतिभा उनकी चेरी है।

उनका जन्म एक ऐसे मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ जो एक संयुक्त परिवार था और तीन पीढ़ियों से एक सूत्र में बँधकर पितृ-सत्तात्मक परिवार के रूप में आगे बढ़ता चला आ रहा था। तात्त्पर्य यह कि जिस तरह दादा जी परिवार को खींचते आये थे उसी तरह उसका बेटा भी और अब उसका पोता भी खींचता है। जल के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जल ही जीवन है। जल सभी प्राणियों के लिए ही नहीं पेड़-पौधों आदि के लिए भी अनिवार्य है। जल मछलियों के लिए तो उसका घर और संसार है ही, क्योंकि मछली तब मरती है, जब उसे पानी से बाहर निकाल दिया जाता है। इतिहास गवाह है कि पहले जल की किल्लत रहती थी। पोखरा और कुआँ ही सामाजिक परिवेश में जल-स्रोत रहा करते थे। वे नसीबवाले माने जाते थे जिन्हें जल-स्रोत आसानी से मिल जाया करता था। इस परिवार के घर के आगे पोखर-कुआँ रहने से कभी जल का अभाव नहीं रहा।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी के पूर्वज इतने उदार इंसान थे कि वे एक अलग मिसाल कायम रखते हुए अपने संयुक्त परिवार में बुआ के परिवार को भी शामिल कर लिया था। परिवार के लोग परिश्रमी थे हीं। इसलिए वे अपनी जमीन के साथ-साथ बाहर वाले जमीन्दार के कुछ खेत बटाई भी करते थे, जिससे परिवार में अनाज अथवा खाने-पीने का अभाव नहीं रहता था। हर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी होता है। इसलिए वह पलने से लेकर श्मशान

तक समाज में ही रहता है। जन्म से लेकर मरण तक समाज में रहकर समाज-कल्याण की बात करता है और सीखता है; उसकी हर गति-विधि में रचना की खुश्बू आती है। दूसरी तरफ समाज भी तौल-जोख कर व्यक्ति का मूल्यांकन करता है। परिवार के लोग व्यवहार-कुशल थे, जिस कारण पारिवारिक और सामाजिक रूप से वे आगे बढ़े हुए थे।

14 जनवरी 1934 ईस्वी को बिहार में भयंकर भू-कम्प आया था, जिसने जान-माल, घर-द्वार, खेत-खलिहान आदि को नुकसान के साथ-साथ आर्थिक ढाँचा को भी गिराकर रख दिया था। फिर आर्थिक गाड़ी कैसे दौड़ती? उसने सामाजिक परिवेश रूपी गाड़ी की धूरी को ही नहीं, बल्कि पूरे बिहार की आर्थिक गाड़ी की धूरी को ही हिला कर रख दिया था। इससे बिहार का मधुबनी प्रभावित हुआ ही और साथ-साथ झंझारपुर क्षेत्र भी प्रभावित हुआ था। कौन प्रभावित नहीं हुआ होगा? जब तालाब के शान्त जल में पत्थर फेंका जाता है, तो लहरें किनारों की ओर बढ़ती चली जाती है। सामाजिक स्थिति के साथ देश की राजनीति स्थिति भी ठीक नहीं थी। कहीं जातीयता का खेल तो कहीं साम्प्रदायिकता का नाटक तो कहीं ऊँच-नीच का उन्माद तो कहीं राजनैतिक दलों के बीच मतभेद बढ़ता चला जा रहा था और भोली जनता उनसे निर्मित जत्ता-चक्की में पिसती जा रही थी- भयावह थी, स्थिति।

1940 ईस्वी के बाद कांग्रेस के साथ-साथ सोशलिस्ट पार्टी और कम्यूनिस्ट पार्टी भी लोगों के बीच राजनीति सोच पैदा करने लगी थीं। सभी पार्टियां अपने-अपने कार्यक्रम के द्वारा अपनी-अपनी बातें लोगों को सुनाती रहती थीं, जिस कारण लोगों में जागरूकता की लहर आने लगी थी। 1942 ईस्वी के जन आन्दोलन अर्थात् बापूजी के ‘अंग्रेजों भारत छोड़ो’ में प्रथम स्वतंत्रता की लड़ाई से उत्पन्न राष्ट्रवाद की लहर और अधिक मजबूत हो चुकी थी। आम जनता के भी दिमाग में आजादी का चक्र नाचने लगा था, क्योंकि सामाजिक परिवेश पर भी यह सोच आई कि आजादी मिलने के बाद जमीन्दारी प्रथा समाप्त हो जाएगी, राज-दरबार के किले ढह जायेंगे, नीलामी प्रथा समाप्त हो जाएगी तथा मालगुजारी की वसूली में जुल्म का ताण्डव बन्द हो जाएगा।

लोग निर्भीक होकर आजाद पक्षी की भाँति स्वच्छन्द उड़ान भरने लगेंगे।

मिथिलांचल के बीच अवस्थित झंझारपुर की अपनी गौरवशाली इतिहास रहा है। इस क्षेत्र में महान से महान व्यक्ति, विद्वान पण्डित एवम् साहित्यकारों ने जन्म लिया है या उनका आविर्भाव हुआ है; जिनकी कीर्ति-पताका देश-विदेश में फहराती रही है और यशोगान यहाँ के कण-कण से लेकर सात समुद्र पार तक गूंज रहा है। इन्होंने समाज-स्तर से लेकर प्रान्त और राष्ट्र-स्तर के कई क्षेत्रों में अपना अमूल्य योगदान दिया है जिसके कारण झंझारपुर भी शैक्षिक, सामाजिक एवम् आर्थिक दृष्टिकोण से देश के स्तर पर पीछे नहीं था, आगे बढ़ा हुआ था। भारत की आजादी की लड़ाई में लहू-लुहान होने वाले लोगों में यहाँ के लोगों की संख्या कम नहीं थी। इस कारण इस क्षेत्र को रक्त बहानेवाला क्षेत्र भी कहा जाता है। अंग्रेजों के अड्डे के रूप में प्रसिद्ध दमनकारी नीति का क्षेत्र भी झंझारपुर रहा है।

कुछ भी हो, परन्तु अभी भी यहाँ पावन मिथिला के ऐतिहासिक दर्शन, वैभवगान और मनोरम झाँकियाँ झलक रही है, मिट्टी, पानी और फूलों में सुगन्ध जनक जी की फुलवारी के पुष्पों जैसा विद्यमान हैं हीं, जो इस क्षेत्र को महिमा मण्डित और गौरवान्वित कर रहा है। इस क्षेत्र की यह खासियत भी रही है कि पहले तो पहले, परन्तु अभी भी विविधताओं में एकता की माला पिरोकर क्षेत्र की भिन्न-भिन्न जाति, वर्ण और सम्प्रदाय मिल-जुलकर आपस में सामाजिक धरातल पर रहना पसन्द करते आ रहें हैं। यही कारण है कि हर गाँव-समाज में विभिन्न जाति, धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय एक भाषा-भाषी के लोग घर बनाकर रहते हैं और पड़ोसी-सा व्यवहार भी करते हैं।

इसे सघन आबादीवाला क्षेत्र भी कहा जाता है क्योंकि यहाँ की जमीन में उर्वराशक्ति पर्याप्त होने के कारण लोग इस क्षेत्र में रहना भी अधिक पसन्द करते हैं फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि झंझारपुर के लोगों को कोई समस्या नहीं थी, वे सब तरह से सम्पन्न थे, जाति- उन्माद, साम्प्रदायिक तनाव या ऊँच-नीच की भावना वहाँ थी ही नहीं।

उस विशेष चर्चित झंझारपुर क्षेत्र में बेरमा नाम का गाँव है, जिसके उत्तर

में नवानी और दक्षिण में दीप गाँव अवस्थित है। महान व्यक्तियों, विद्वानों प्रकाण्ड पण्डितों एवम् साहित्यकारों के अहर्निश तपस्या से दीप्त मिथिलांचल के भू-खण्ड पर शोभायमान है, यह गाँव। 5 जुलाई 1947 ईस्वी को इस गाँव में, अर्थात् बेरमा में अचानक एक अद्भूत घटना घटी और एक सितारा चमक उठा। एक साधारण किसान के परिवार के घर से एक रोशनी चमकी, जिसे किसी ने देखा तो नहीं, लेकिन अहसास किया। तभी एक नव शिशु का रूदन हो गया- "चिहू-चिहू-चिहू आ.. आ...।"

नव अंकुर-चाँदनी नहीं चाँद, अर्थात् एक चाँद-सा बेटा का जन्म हुआ। ऐसा भान होता है कि वह नील गगन से टूटा हुआ कोई सितारा हो, किसी सुन्दर तालाब के कोई मनहर कमल का फूल हो और उसके किसलय हाथों में महान पण्डितों की लेखनी हो और वह कोई करतार बनकर धरती पर आया हो। वह शिशु और कोई नहीं जगदीश प्रसाद मण्डल जी ही थे। इस तरह इनका जन्म नहीं आविर्भाव हुआ था। क्योंकि आज की तिथि में ये भटके हुए लोगों को, दीन-हीन मजलूमों को, क्षय होते समाजों को और कमजोर संघों को जो सन्देश दे रहें हैं, इससे यही प्रमाणित हो रहा है। मानवता का साक्षात् प्रतिमूर्ति ये अपना मानवोचित सन्देश लेकर साहित्य-संसार में विचरण कर रहें हैं। इन्होंने उपदेश-सन्देश परक पुस्तकें लिख-लिख कर आज ऐसी पुस्तकों का गगन-चुम्बी पहाड़ खड़ा कर दिया है- सौ से अधिक पुस्तकें। इसी को कहते है-शतकवीर।

इस तरह दल्लू मण्डल के मानवीय चमन में एक ऐसा फूल खिला है, जिसकी सुगन्ध को वयार चहुँ ओर फैला रही है, अर्थात् इनकी कृति कान्तिवान हो रही है- सिरजन करतार वा कहें उस्ताद। सोना को आग में जितना तपाया जाता है उसकी कान्ति या चमक उतनी अधिक बढ़ती जाती है। इनके जीवन के साथ भी संघर्ष की जो कहानी जुड़ी हुई है, यश-अपयश की आँख-मिचौनी का खेल, खेलकर सही लीक धारी मानवों के निर्माण की कड़ी जो जुड़ी हुई है, अहर्निश साहित्य-साधना की दीप्ति से दीप्त लड़ी जो इनके साथ है। इन

अनुभवों के दीव्य ताप से तप्त जगदीश प्रसाद मण्डल जी भी और स्वर्णिम हुए हैं-

“कंचन से कान्ति तब निखरे
जब अनल समागम होता है।
निस्तेज चाँद नभ में दमके
जब पूनम समागम होता है।
मानव का सितारा तब चमके
जब अनुभव का समागम होता है।”

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

वेद-पुराण और शास्त्र साक्षी है कि जब-जब धरती पर अधर्म, पाप और अत्याचार का बोलवाला हुआ है और दुष्ट शैतानों के कुकर्मो के ताण्डव नृत्यों से धरती कराह उठती रही है, तब-तब सर्वशक्तिमान प्रभु ने, महामानवों ने अवतार लिया है। और उन दुष्टों का संहार किया है। महा दुष्ट राक्षस महिषासुर को शक्ति की अधिष्ठात्री देवी माँ दुर्गा ने, पापी लंकापति रावण को पुरुषोत्तम राम ने तथा अधर्मी कंश को लीलाधारी कृष्ण ने मारा था। इतिहास भी गवाह है कि सामाजिक अव्यवस्था, शोषण, कुव्यवस्था तथा कुप्रथा को बन्द करने और सामाजिक परिवेश को निर्मल करने, लहूलुहान से रक्षार्थ महामानवों का आना हुआ था। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा जैसे अमानवीय तथा क्रूर प्रथा को समाप्त करवाया था, महात्मा कबीर ने हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियाँ, ब्राह्मवाद, इस्लाम में व्याप्त बाहरी आडम्बर पर तीखा प्रहार किया था, कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद का विचार दिया था, बाबा साहैब भीम राव अम्बेदकर ने समाज में व्याप्त अछूत प्रथा को समाप्त करवाया था, जो मानवीय भारतीय संविधान की धारा- 17 में मिलता है। पूज्य बापू ने गुलाम भारत को दासता से मुक्त किया था, सर्वांगीण विकास या सर्वांगीण शिक्षा की अवधारणा पर ध्यान केन्द्रित किया था। यहाँ बुद्ध आये और महावीर जैन जैसे समाज सुधारक सन्त भी आये थे.. इत्यादि। जो हो और जैसा हुआ हो, लेकिन सत्य तो यह है कि दल्लू

मण्डल जैसे साधारण किसान परिवार में जगदीश प्रसाद मण्डल का जन्म हुआ है। हाँ, जन्म के समय सामाजिक परिवेश ठीक नहीं था। जाति, धर्म, भेद-भाव, अलगाववाद तथा सम्प्रदायों के जहरीले कांटों से समाज बिंध चुका था और उन्मुख नहीं हो रहा था, जगदीश प्रसाद मण्डल का जन्म हुआ।

आजादी की लड़ाईयां कई चरणों में लड़ी गई थीं। आजादी की बलिवेदी पर अपनी जान की कुर्बानियाँ देकर भारत के वीर सपूतों ने देश को आजाद किया। कवियों ने गीत लिख कर, साहित्यकारों ने शब्दों के तीर चलाकर, रचनाकारों ने व्यथा-गाथा रचकर और मूर्तिकारों ने शहीदों का स्मारक गढ़कर आम जनता में स्वदेश-प्रेम की भावना जगा दी थी- आर.के. नारायण के मुंडमाल, प्रेमचन्द के बलिदान, डॉ. वासुदेवन शरण अग्रवाल के पृथ्वीपुत्र आदि कहानी- रचना इसका जीता-जागता उदाहरण है। क्रान्तिकारी गाया करते थे-

"माँ से कहो कि बच्चे दे-दे
बहन भी दे-दे भाई
भारत माँ के सुहाग पर कुछ ऐसी घड़ी है आई
ये सोना और चाँदी क्या है उतार दो सब जेबर...।"

इन चीजों ने राष्ट्रीयता की लहर को इतना लहरा दिया कि इसकी धारा में अंग्रेजी शासन बहकर सात समुद्र पार चला गया और भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त हो गया। वह यादगार और अमर तिथि- 15 अगस्त 1947 की है तथा वह खुशनसीब बेला 14 अगस्त 1947 की आधी रात की थी, जब रिम-झीम वर्षा हो रही थी। मानो दासता की उष्णता को शीतलता प्रदान करने के लिए आजादी, अमृत जल लेकर आई हो, और भारत माता को सिंहासनारुढ़ देखकर उस जल से अभिषिक्त कर रही हो।

जो भी हो, जैसा भी हुआ हो, परन्तु देश आजाद के बाद नेहरू जी ने दिल्ली के लाल किले पर भारतीय तिरंगा झण्डा फहराया था और आजाद भारतवासियों को सम्बोधित किया था। इससे आम जनता में खुशी की लहर दौड़ उठी थी। जिस तरह पिंजड़े के पक्षी पिंजड़े से निकलकर स्वच्छन्द उड़ान

भरते हैं, उसी तरह भारतवासियों ने महसूस किया था। चारों ओर, गल्ली-गल्ली, डगर-डगर, गाँव-गाँव और शहर-शहर सभी जगह आनन्द का वातावरण व्याप्त हो गया था। सभी के लबों पर आनन्द के गीत थिरक रहे थे। देश आनन्द-नृत्य के सागर की लहरों में मग्न था और भारत माता की जय! गाँधीजी की जय!! का नारा लगा रहा था कि अगले वर्ष अचानक 30 जनवरी 1948 ई. को राजधानी दिल्ली में गाँधी जी की हत्या दिन-दहाड़े कर दी गई, रंग में भंग हो गया और भारत फिर तबाह हुआ। यह हृदयविदारक घटना देश की राजनीतिक विचारधारा एवम् शासन की महा कमजोरी को उजागर कर रही थी। उस वक्त भारतीय संविधान का निर्माण-कार्य भी चल रहा था। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (भारत का प्रथम राष्ट्रपति) और प्रारूप समिति का अध्यक्ष डॉ. भीम राव अम्बेदकर जी थे। बाबा साहेब अम्बेदकर को संविधान-शिल्पी माना गया है और उन्हें ही संविधान-निर्माण का सर्वाधिक श्रेय दिया जाता है। 19 नवम्बर 1949 को 2 वर्ष 11 महीने 18 दिनों में संविधान बनकर तैयार हो चुका था, जो दिव्य तिथि 26 जनवरी 1950 ईस्वी को सम्पूर्ण भारत में लागू कर दिया गया और भारत गणतंत्र घोषित हुआ। 26 जनवरी गणतंत्र-दिवस के नाम से भारत के राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाई जाती है।

1950 ईस्वी में ही एक दुखद घटना बेरमा, झंझारपुर में भी घटी थी। उस दिन जगदीश प्रसाद मण्डल जी के पिताजी स्वर्ग सिधार गये थे। उस समय वे (जगदीश प्रसाद मण्डल) मात्र 3 वर्ष का बालक थे। वे खूद कहते हैं- “मुझे पिता की मृत्यु का कुछ भी ज्ञात नहीं है। गाछी में जलती हुई केवल चिता हीं...। उस समय मैं तीन वर्ष का था। दो भाईयों के भैयारी में मेरे अग्रज 6 वर्ष के थे। ईलाज की अच्छी व्यवस्था नहीं थी। दरभंगा अस्पताल भी नहीं बना था। झाड़-फूक से लेकर जड़ी-बूटियों से ईलाज हो रहा था।”

पिता जी के स्वर्गारोहण के बाद जगदीश प्रसाद मण्डल के परवरिश की चर्चा न्यायोचित ही है। संयुक्त परिवार के सुदृढ़ व्यवस्था रहने के कारण उन्हें कोई कमी महसूस नहीं हुई। लालन-पालन से पढ़ाई-लिखाई तक। वे कहते हैं-

"पहले आज के परिवार जैसा नहीं था कि बेटा माता-पिता को मन से नहीं देखता है और न हीं माता-पिता बेटा-पतोहू को। संयुक्त परिवार था और अच्छी सोच थी। यदि परिवार का मुखिया ईमानदारी से परिवार का भार वहन न करें तो परिवार कैसे उन्नतिशील होगा, हम कैसे देश को महान कहते हैं? दिल पर हाथ रखकर कहना पड़ेगा कि हमने दिया क्या और लिया क्या। इसका दोषी हमलोग भी हैं, बुरा नहीं लगना चाहिए। हमारी समझ और दृष्टि अच्छी रहनी चाहिए।

अन्य जातियों के साथ भी परिवार का सम्बन्ध अच्छा था। गाँव के चारों ओर सम्बन्ध अच्छा था और आज भी है। सम्बन्धित लोग समय-समय पर आते-जाते थे। एक से बढ़कर एक खिस्सकर, गप्प करनेवाले तथा कहानीकार थे, जो सबके लिए पुल तैयार करते थे। रात में भी खिस्सा और दिन में गप्प के कारण दिन-रात एक समान रहता था। परिवार की अनुकूल परिस्थिति रहने के कारण परिवार में किसी तरह का अभाव नहीं था।"

सामाजिक वातावरण या सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार पहले चार-पाँच वर्ष में ही विवाह हो जाता था। जगदीश प्रसाद मण्डल ने इसके सम्बन्ध में वयां किया है-

"भैया का विवाह हो चुका था। उस समय चार-पाँच वर्ष की उम्र में हीं विवाह हो जाया करता था। सात भाई-बहनों में मेरी मौसी सबसे ज्येष्ठ थी और मेरी माँ सबसे छोटी थी। इसलिए मेरी माँ पर उसका प्रभाव बना रहता था। इस कारण भैया का विवाह पाँच वर्ष में ही कर दिया गया था। भविष्य की ओर जब उसने दृष्टि दौड़ाई तो उसकी नजर मुझपर पड़ गई। उस समय पिता जी रुग्न अवस्था में बिछावन पर थे। रोगी की इस हालत में ऐसी स्थिति हो जाती है कि जिसकी कोई निश्चितता नहीं होती- बच भी सकता है या मर भी सकता है। इस कारण इस अवस्था में ईमानदारी का आना स्वाभाविक हो जाता है।" गोधनपुर की मौसी के परिवार में ददिया श्वसुर, मछधी (सिमरा) का रिश्ता था। ददिया श्वसुर का परिवार सुभ्यस्त और सुखी सम्पन्न था। जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने चर्चा की थी- "ददिया श्वसुर सुराग लगाकर गोधनपुर वाला मौसा जी के छोटे

भाई बचाई मण्डल के साथ बेरमा आने लगा। छल-प्रपंच से दूर रहनेवाली मौसी ने माँ को इसका अनुदेश दे दिया और माँ भी आश्वासन देती हुई बोली कि इस समय पति बीमार है और बिछावन पकड़े हुए हैं। राजादैव का कोई ठीक नहीं है। इसलिए अभी कुछ नहीं कहा जा सकता है, बाद में देखा जायेगा।"

मछधी में ताड़-खजूर अधिक रहने के कारण ताड़ी पीने का रीति-रिवाज था। इस कारण ददिया श्वसुर के परिवार को व्यवहार में कम आंका जाता था। "पिता जी की मृत्यु तक वे बेरमा में ही रह गये थे। जो बोली जीवित थी, पिता जी की वह बोली बन्द हो गई। पिता जी के हाथ-पैर का हिलना-डुलना बन्द हो गया। माँ को और गोधनपुर वाला मौसा को ददिया श्वसुर ने बुलाया और मौसा जी से कहा- 'समधी जी यह बालक मुझे दे दीजिए। मैं गोबर पाथने के लिए अपनी पोती दे दूँगा।' मौसा ने समर्थन करते हुए कहा- 'यह तो घर-कथा हुई। इसमें हाँ, हूँ नहीं न कहा जा सकता है।' इस बीच मौसी टपक पड़ती है, और माँ से कहती है- 'बहिन, इनको बच्चा दे दिया गया, परन्तु अभी बाल-बोध है।" तीन साल की अवधि में जगदीश प्रसाद मण्डल के विवाह की बात पक्की हो गई।

उनसे मुलाकात होने पर यह चर्चा की- "पिता जी के स्वार्गारोहण के बाद भी मैं समय पर स्कूल जाया करता था। गाँव में लोअर प्राइमरी स्कूल था। भीत घर (मिट्टी का घर) होने के कारण, जो 1934 ईस्वी के भूकम्प में गिर गया था। बेरमा में स्कूल का घर या स्थान उस तरह बदला जैसा कि दैव-प्रकोप समझ कर लोग अपना घर बदल लेता है। बेरमा में अवस्थित तीन कचहरियों में से दक्षिणी कचहरी में स्कूल चलने लगा।"

भारतीय संविधान को बनने में 2 वर्ष 11 महीना 18 दिन लगे और 19 नवम्बर 1949 ई. को वह बनकर तैयार हो गया, जो 26 जनवरी 1950 ईस्वी को सम्पूर्ण भारत वर्ष में लागू हुआ। 1952 ईस्वी में आम चुनाव की प्रक्रिया शुरू हुई। राज्य और केन्द्र में नव सरकार का गठन हुआ। नव सरकारों के बीच हजारों समस्याएँ उपस्थित हो गई।सामाजिक परिवेश भी प्रभावित हो गया था।

बेरमा में पण्डित समाज...

बेरमा पण्डितों के गाँव के नाम से जाना जाता है। गेठरी झा पण्डित को राज- दरभंगा के द्वारा सात सौ बीघा जमीन दी गई थी, जो चर्चा का विषय बना हुआ है।

पिछली पीढ़ी में चार लोगों ने वेद, व्याकरण-साहित्य से आचार्य किया था। दो को मैडल भी मिला था। वैसे इनमें से तीन लोग गाँव से बाहर विद्यालय पकड़ लिए थे, लेकिन शेष एक मेडलधारी किराना का दुकान खोल रखा था। यहाँ यह मुहावरा चरितार्थ होता है- “पढ़े फारसी बेचे तेल..।” जो हुआ हो और जैसा हुआ हो, लेकिन उसने अपने मेहनत और लगन से तीनों को पीछे कर दिया। बेरमा मेहनती गाँव पहले भी था और आज भी है। वह अपने दुकान का सामान माथे पर लाता था, चाहे बैशाख की धूप क्यों न हो। दुकान खूब चलता था, क्योंकि समाज को इसकी आवश्यकता थी और गाँव में एक ही दुकान था। बाद में बेरमा में एक दुकानदार और आया। जगदेव चौधरी ने झंझारपुर से आकर बेरमा में दुकान लगाया था, क्योंकि भूकम्प में ईंट के मकान रहने के कारण परिवार के अन्य सभी लोक उसमें दबकर मर चुके थे।

जिस तरह बेरमा गाँव राजनीतिक दृष्टि से जागृत था, उसी प्रकार शैक्षणिक दृष्टि से भी आगे था। गाँव के उत्तर नवानी विद्यालय और दक्षिण दीप विद्यालय (पाठशाला) चल रहा था। तमुरिया और झंझारपुर में हाई स्कूल भी बन चुका था।

गाँव के जो तीन पण्डित बाहर रह रहे थे, उन सभी के परिवार गाँव में ही रह रहे थे। छुट्टी में वे पण्डित लोग गाँव आकर, गाँव में ही छुट्टी बिताते थे।

गाँव का स्कूल पहले जिस स्थान पर चल रहा था, वह शक्तिशाली स्थान, ब्रह्मस्थान था, जहाँ आज आँगनबाड़ी-केन्द्र चल रहा है। लक्ष्मीकान्त-रामाकान्त साहु की कचहरी में विद्यालय चलने लगा था। वर्त्तमान में विद्यालय

तीसरे स्थान पर अवस्थित है। वैसे यह जमीन सरिसव पाही के प्रो. हेतुकर झा की है, जहाँ पंचायत भवन, मध्य विद्यालय, जर्जर अस्पताल और भव्य दुर्गा मन्दिर भी हैं।

एक कतार में अवस्थित नवानी, बेरमा और दीप तीनों गाँवों में सामाजिक वातावरण में अधिक भिन्नता पायी जाती है, जो परगना का प्रभाव एवम् सामाजिक बनावट पर निर्भर करता है। जिस जगह नवानी और दीप में ताड़-खजूर अधिक रहने के कारण पीने वालों की संख्या अधिक है, तो दूसरी ओर बेरमा में एक भी ताड़-खजूर नहीं है। बेरमा में जहाँ मध्यम वर्गीय जाति अधिक है, तो नवानी और दीप में लोग या तो अधिक धनिक थे या तो अधिक गरीब।

जगदीश प्रसाद मण्डल जब पाँच-छह वर्ष के ही थे, अपने भ्राता कुलकुल मण्डल जी के साथ स्कूल जाने लगे थे। गाँव के लोअर प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे, जो दो पालियों में चल रहा था। वर्त्तमान में अब उसमें आठवें तक की पढ़ाई होने लगी है; वहाँ एक शिक्षक से बढ़कर पन्द्रह शिक्षक भी हो गये हैं। इससे क्या बेरमा की शिक्षा आगे बढ़ चली है? सर्वांगीण विकास अनिवार्य है, जो सुव्यवस्थित शिक्षा ही दे सकती है, अन्यथा विकलांग होने से कोई रोक नहीं सकता।

सामान्यत: स्कूल और कॉलेज तो खुल गये, परन्तु तकनीकी शिक्षा का विकास नहीं हुआ। लेकिन आजादी के बाद राजनीतिक दृष्टि से और शैक्षणिक दृष्टि से बेरमा आगे बढ़ा हुआ गाँव रहा।

आजादी के आन्दोलन में बचनू मिश्र का नाम गाँव में उभरा। वह नवानी विद्यालय का रसोइया था; पढ़ा-लिखा तो नहीं था, परन्तु वक्ता बन चुका था। देश के प्रति समर्पित था, वह। आजादी के दौड़ में तीन महीने तक बिना नमक का बैगन उबाल-उबालकर खा कर, रात-दिन काम करता रहा; काम भी ईमानदारी से करता था। 1934 ईस्वी के भूकम्प के राहत कार्य में बँटे जा रहे राशन के बँटवारे में मधेपुर थाना में उसने ईमानदारी का ऐसा परिचय दिया कि समाज के सभी लोग उसे 'गाँधी जी' कहने लगे। बेरमा को पंचायत बनाने में

उनका अहम् योगदान था। दीप गाँव के नेतृत्व एवम् सहयोग में उसे बेरमा पंचायत बनबाने का मौका मिला।

बाद में बचनू मिश्र का दिमाग गड़बड़ा गया। अस्सी वर्ष के हो जाने के बाद वह स्वर्ग सिधार गया। मानसिक स्थिति के गड़बड़ाने के दो कारण थे- प्रथम, पारिवारिक आर्थिक स्थिति और द्वितीय राजनीति क्षेत्र में ईमानदारी का अभाव।

पण्डितों के समाज में 18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एकहरे खड़का मूल के परिवार में पण्डित कंचन झा और पण्डित बबुए झा वैदिक हुए। वैसे उस समय अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ था, परन्तु संस्कृत शिक्षा का स्वर्णिम युग अवश्य था। स्वर्णिम इसलिए कि सामाजिक ढाँचा कुछ विच्छृंखला को छोड़कर वैदिक पद्धति से चल रहा था, जो आगे बढ़ता रहा। आगे अंग्रेजी शिक्षा का भी प्रभाव समाज पर खूब पड़ा।

पण्डित कंचन झा के पुत्र भुटाइ झा, जो गेठरी झा के नाम से प्रसिद्ध हुए थे, एक ख्याति प्राप्त वैदिक हुए थे, जिन्हें राज-दरभंगा से सात सौ बीघा जमीन लखेराज ब्रह्मोतर रूप में मिली थी, जो वर्णित है। उस समय काशी से शिक्षा लेने वाले को ही पण्डित कहा जाता था।

पण्डित चित्रधर ठाकुर गेठरी झा के ही भागीन थे। उनके तीन पुत्र थे- 1. पं. जयनाथ ठाकुर, 2. पं. तेजनाथ ठाकुर और 3. पं. खर्गनाथ ठाकुर। तीनों भाई पण्डित थे; परन्तु सब से ज्येष्ठ भाई- पं. जयनाथ ठाकुर किसान बनकर खेती करने लगे थे। शेष दोनों भाई- पं. तेजनाथ ठाकुर और पं. खर्गनाथ ठाकुर की गिनती ऊँच कोटि की श्रेणी में होती थी, क्योंकि वे काशी से शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। इनमें पं. तेजनाथ ठाकुर ने आजीवन लोहना संस्कृत विद्यालय में सेवा दी। आगे चलकर परिवार में पण्डित गौरीनाथ ठाकुर, अनिरुद्ध ठाकुर और सुन्दर ठाकुर हुए। इनमें शरीर से विकलांग अथवा दिव्यांग रहने के कारण पं. सुन्दर ठाकुर बेरमा में रहकर वैद्यगीरी करते रहें। पं. अनिरुद्ध ठाकुर व्याकरण के पण्डित थे और उन्होंने सीतामढ़ी विद्यालय में आजीवन अपनी सेवा दी।

अभी तक पण्डितों के दो ही परिवारों की चर्चा हुई है। पं. कामेश्वर झा, जिन्होंने खगड़िया विद्यालय तथा दीप विद्यालय में भी अपनी सेवा दी थी, वे वेद-व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। पं. चण्डेश्वर झा अरड़िया मध्य विद्यालय के संस्थापक शिक्षक बनकर वृद्धावस्था में मर गये।

इनमें पण्डित उपेन्द्र झा सबसे भिन्न स्वभाव के थे। वे ज्योति, वेद, व्याकरण और साथ-साथ साहित्य के विशेष ज्ञाता थे। उन्होंने कई महाविद्यालयों में अपनी सेवा दी और अन्तोगत्वा देह त्याग किया। सबसे भिन्न वे इस अर्थ में थे कि किसी भी महाविद्यालय में वे अधिक दिनों तक नहीं टिक पाते थे। जब वहाँ खटपट-अनवन हो जाती थी, तो घर आकर भी किसी को नहीं बतलाते थे। वे पैरों में जूत्ता-चप्पल नहीं पहनते थे, केवल खड़ाउ पहना करते थे। विद्वानों के बीच उनकी एक अलग पहचान बनी थी, जिस कारण किसी भी महाविद्यालय में उनका स्वागत किया जाता था।

पं. उदित नारायण झा, जो गोल्ड मेडल से सम्मानित थे, अपने घर की आर्थिक स्थिति कमजोर देखकर बेरमा में ही दुकानदारी करने लगे थे, जिससे उन्होंने बीस बीघा जमीन बना ली थी। (पीछे भी वर्णित)।

पं. राम नारायण झा व्याकरण के ज्ञाता थे। उन्होंने पुलिस की नौकरी की और बाद में विदेशी शासक के विरोध में उठती आवाज के लिए नौकरी छोड़ दी। तत्पश्चात उन्होंने घोघरडीहा (मधुबनी) के बेसिक स्कूल में प्रवासी जी के साथ अपनी अहम् सेवा दी।

1956 ईस्वी में गाँव के स्कूल से पास करके जगदीश प्रसाद मण्डल जी बेरमा से सटे कछुबी मध्य विद्यालय में अपना नामांकन करवाये। पहले कछुबी में पाँचवें वर्ग तक का ही स्कूल था। मिडिल स्कूल बनने के बाद भी अलग-अलग पढ़ाई होती थी। उस समय पाँचवें तक की पढ़ाई का शुल्क नहीं लगता था, परन्तु छठे-सातवें में ढाई रूपये शुल्क लगता था।

पारिवारिक स्थिति को कमजोर और सामाजिक वातावरण को काँट की शय्या देखते हुए श्री मण्डल ने शिक्षा पर अधिक जोर दिया और एक मेहनती तेजस्वी छात्र के रूप में अपनी पहचान बना ली- "होनहार विरवान के होत

चिकने पात।" को चरितार्थ किया।

1957 ईस्वी में देश में दूसरा आम चुनाव हुआ। इस चुनाव में काँग्रेस सरकार की स्थिति कमजोर हुई। केरल में वामपंथ की सरकार बनी। इस अवधि में कुछ-कुछ हाई स्कूल और कॉलेज प्राइवेट रूप में खुलने लगे और ऊँच शिक्षा की दिशा में प्रचार होने लगा।

1959 ईस्वी में झंझारपुर में जनता कॉलेज भी खुला। यह जन-सहयोग से इस रूप में आया था। पहले हाई स्कूल में ही इसकी व्यवस्था हुई, क्योंकि पढ़ाई के लिए लम्बे-चौड़े घर की आवश्यकता थी। कुछ गिने-चुने विषयों की ही पढ़ाई शुरूआत में प्रारम्भ की गई। जो हुआ और जैसा हुआ, लेकिन शिक्षा में तो नव जागरण आया हीं।

1960 ईस्वी में जगदीश प्रसाद मण्डल मध्य विद्यालय से निकलकर केजरीवाल हाई स्कूल, झंझारपुर में अपना नामांकन करवाया। बेरमा के विद्यार्थी रमौली (तमुरिया) हाई स्कूल और झंझारपुर हाई स्कूल, दोनों में पढ़ने जाते थे। इसका कारण यह था कि जैसे योग्य शिक्षक झंझारपुर हाई स्कूल में थे, वैसा रमौली (तमुरिया) में नहीं थे। तमुरिया हाई स्कूल में हर साल एक-आध शिक्षक स्कूल से आते-जाते रहते थे। दूसरी तरफ झंझारपर हाई स्कूल में ऐसी बात नहीं थी।

जिस तरह गाँव के अन्य विद्यार्थी झंझारपुर हाई स्कूल पढ़ने के लिए आते-जाते थे, वैसे ही जगदीश प्रसाद मण्डल झंझारपुर आते-जाते थे। कुछ छात्र विद्यालय के छात्रावास में भी रहते थे, परन्तु जगदीश प्रसाद मण्डल को कुछ-न-कुछ असुविधाएँ थीं, जिस कारण वह छात्रावास में नहीं रह पाते थे, जो आज भी है।

मौसमी अवकाश विद्यालय में दिया जाता था। अगहन से माघ तक दिन छोटा होता था, परन्तु विद्यालय का समय छोटा नहीं होता था।

इस प्रकार गर्मी बढ़ने पर असुविधा को देखते हुए ग्रीष्मावकाश दिया जाता था, जो लम्बी छुट्टी होती थी- एक महीने के लगभग की छुट्टी। इसे आम

खानेवाली छुट्टी भी कही जाती थी, क्योंकि मिथिला का प्रसिद्ध आम का मौसम भी इसी में चलता है।

इन छुट्टियों से अच्छे परिवार के विद्यार्थियों को दुगुना लाभ मिलता था, क्योंकि वे अवकाश के समय का सदुपयोग करते थे- आम भी खा लेते थे और विषय-वस्तुओं की तैयारी भी कर लेते थे, परन्तु साधारण परिवार के छात्र उक्त अवकाश का सदुपयोग नहीं करते थे, समय को व्यर्थ में नष्ट कर देते थे। जाड़े के महीने में जाड़ा बड़ेरी को छू लेता था, उसी प्रकार गर्मी ऋतु में गर्मी वृक्ष की फुनगी को छू लेती थी। अवकाश का निर्धारण का यही कारण होता था। गर्मी छुट्टी से पहले तक विद्यालय प्रात:कालीन हुआ करता था।

तमुरिया हाई स्कूल और झंझारपुर हाई स्कूल आधा घन्टा आगे-पीछे खुला करता था! इसका कारण- कमला के पश्चिम के गाँव, मेंहथ, नरूआर आदि से लेकर पूरब में बेरमा तक और गंगापुर, खड़बाइर से लेकर अरड़िया तक के विद्यार्थी झंझारपुर में पढ़ते थे। इसलिए विस्तृत क्षेत्र रहने के कारण वह विद्यालय आधा घन्टा विलम्ब से खुलता था। पैदल चलने का रिवाज बन चुका था, क्योंकि बेरमा के छात्र कठिन रास्ते से पैदल लोहना विद्यालय से पढ़कर आते थे। कठिनाई तो होती ही थी, जो बरसात में और बढ़ जाती थी।

केजरीवाल हाई स्कूल, झंझारपुर में 1963 ई. में हायर सेकेण्ड्री की पढ़ाई भी शुरू हुई। शुरूआती दौड़ में कुछ इने-चुने विषयों की पढ़ाई शुरू हुई। इसमें व्यवधान भी हुआ। कला और विज्ञान की मंजूरी मिल गई, परन्तु वाणिज्य को मंजूरी नहीं मिली थी।

जगदीश प्रसाद मण्डल ने 1965 ईस्वी में हायर सेकेण्ड्री पास किया और बी.ए. पार्ट- 1 में नाम लिखवाया। पहले दो वर्ष का आई.ए. और दो वर्ष का बी.ए. होता था। बी.ए. पास कर छात्र एक वर्ष ऑनर्स भी कर सकता था, जो उस छात्र पर निर्भर था। इस परिप्रेक्ष्य में बी.ए. के बाद जगदीश प्रसाद मण्डल की इच्छा ऑनर्स करने की हुई, लेकिन जनता कॉलेज, झंझारपुर में ऐसी सुविधा नहीं थी। इसलिए उन्होंने प्राइवेट रूप से तैयारी कर सी.एम. कॉलेज, दरभंगा से फॉर्म भरवाया और ऑनर्स हिन्दी से किया।

मिथिलांचल में आजीविका का मूल साधन कृषि था। वैसे, कृषि विशेष तौर पर आजीविका का बड़ा साधन है, लेकिन ऐसा नहीं था, जो भी था उसमें भी छल-प्रपंच चल रहा था। बटाई खेती में उपज का केवल आधा हिस्सा ही बट्टेदार को मिलता था, जबकि मेहनत और लागत अधिक लगता था, परन्तु लाभ कम मिलता था। इसके साथ-साथ रौदी, अकाल, मरहाना या दाही की मार भी ऊपर से पड़ती थी। इतना ही नहीं, गाँव-गाँव में महाजनी प्रथा भी थी, तात्पर्य अन्न-अनाज की महाजनी भिन्न-भिन्न दर पर यथा किसी गाँव में सवाई, मतलब एक मन का सवा मन, एक ही सीजन में। किसी अन्य गाँव में ग्यारही, अर्थात् आठ पसेरी के मन में एक मन का ग्याहर पसेरी लेना। इस प्रकार किसी दूसरे गाँव में एक मन का बारह पसेरी लेना, अर्थात् डेढ़िया नीति। इसका यह हिसाब हुआ कि एक मन में आधा मन सूद ही देना पड़ता था। इसके साथ किसान को उसी साल में कर्ज चुकाना पड़ता था। यदि वह नहीं दे पाता था, तो उस सूद को मूल धन में जोड़ दिया जाता था, जिस कारण दो वर्ष होते-होते कर्ज दोगुना हो जाता था।

आजकल की तरह शादी-विवाह इतना भारी नहीं था, परन्तु माता-पिता के श्राद्ध में सामाजिक और जातीय दबाव इतना बढ़ता था कि लोगों को अपना खेत बेचना पड़ता था। खेत के हिसाब से चार प्रकार के किसान होते थे, जो सभी परेशान रहते थे। इतना ही नहीं, खेतों में काम करनेवाले बोनिहार मजदूरों की स्थिति भी बद-से-बदतर थी- एक तो दिनभर की मजदूरी कम थी और दूसरा साल भर में गिनकर काम मिलते थे।

किसानों के बीच वैज्ञानिक खेती नव तकनीकी-पद्धति का अभाव था। अभाव का कारण भी था- न तो सरकार का ध्यान खेती की ओर था और न हीं खेती का उपयुक्त साधन उपलब्ध था। त्रेता युग के राजा जनक के हल जैसा खेत जोतनेवाला हल होता था, जैसा कमजोर बैल वैसा ही हलवाहा। इसके साथ खेत पटाने के लिए पानी की दूसरी कोई व्यवस्था नहीं। वर्षा होती थी और पानी खेतों में ठहर जाता था, तभी खेती का श्री गणेश होता था। यही कारण था कि उचित समय पर उचित खेती नहीं हो पाती थी। तालाब-पोखर में बिना

पालित-पोषित जो मछलियाँ होती थीं, उसी को पालित मछली कही जाती थी। उसी प्रकार सब्जी-तरकारी का और फल-फूल का हाल था। अधिकांश किसानों की ऐसी दशा और समस्या बन गई थी, जिसपर जीवन-यापन करना बहुत कठिन था।

पशुपालन रूप में गाय-भैंस और बकरी पालन, मात्र नाम का था। गाय-भैंस पालने के पीछे महाजनी का ऐसा सूत्र लगा हुआ था कि पालने-पोसने वाला सिर्फ पोसते थे, पालते थे। एक तो नस्ल के कारण कारोबार में पीछा हो जाता और दूसरा महाजनों के ऐसे जाल में फँस जाते, जिसे आगे बढ़ने की कोई सम्भावना हीं नहीं रह जाती।

नकदी फसल के रूप में ईंख और पटुआ की खेती होती थी। लेकिन उद्योग पति की नीति से वे दोनों कमजोर ही रह गये। वैसे सरकार के प्रति जन आक्रोश बढ़ चला। गाँव-समाज के लोग सरकारी लाभ का अर्थ कोटा की वस्तु भर मानते रहे, जो रास्ते से भी गायब हो जाते।

1967 ईस्वी का चुनाव आया। उस समय जगदीश प्रसाद मण्डल बी.ए. पार्ट- 1 का छात्र था। राजनीति पार्टियों की स्थिति ठीक नहीं थी। जिस प्रकार काँग्रेस पार्टी जन समूह से हटकर कुछ खास जातियों की पार्टी बन रही थीं, उसी प्रकार अन्य दूसरी पार्टियों के साथ भी थी। कम्युनिस्ट पार्टी कुछ क्षेत्रों में मजबूत हो चली थी तो झंझारपुर में कमजोर थी, फिर भी यह इस क्षेत्र में अपना पाँव जोर-शोर से पसार रही थी। काँग्रेस के प्रति लोगों का आक्रोश बढ़ता चला जा रहा था।

सरकार की (काँग्रेस सरकार) विरोधी हवा बनती जा रही थी। इसका कारण भी था- स्वतंत्रता आन्दोलन में स्वतंत्र देश की जो आकांक्षा होती है, वह सभी के मन में बसी हुई थी हीं लेकिन देश स्वतंत्र होने के बाद भी उसकी पूर्ति का कोई उपाय सामने नहीं आया। साथ-साथ काँग्रेस पार्टी जन समूह को छोड़कर परिवार विशेष अथवा जाति विशेष में सिमट चुकी थी। ग्रामीण समाज में स्वतंत्रता का कोई लाभ स्पष्ट रूप से नहीं आया। कृषि प्रधान मिथिलांचल की स्थिति पूर्ववत बनी रही। वैसे देश में पंजाब के किसानों की स्थिति सुधर

गई। कारण यह कि वहाँ की सरकार ने कृषि को प्रमुखता से पकड़कर पानी और बिजली की व्यवस्था कर ली। पानी और बिजली कृषि के लिए प्रमुख साधन है। ऐसी व्यवस्था बिहार में नहीं हुई। शिक्षा-व्यवस्था में भी जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ। साथ-साथ और कई कारण हुए जिससे छात्रों के बीच भी आक्रोश बढ़ गया। राजनीतिक चेतना बढ़ाने वालों की संख्या भी बढ़ गई। पार्टियों के बीच आपसी लड़ाई-झगड़े से स्थिति और खराब हो गई। काँग्रेस विरोधी पार्टियाँ एक मंच पर आ गई और अंग्रेजी शासन के समान काँग्रेस सरकार का विरोध करने लगीं। वैसे तो देश का मुद्दा बिहार में भी कहा जा सकता है, जहाँ स्वतंत्रता के बाद पहली बार जन-जागरण जोर पकड़ा था।

वर्त्तमान समय में मधुबनी जिले में दो लोक सभा क्षेत्र हैं- (1) मधुबनी और (2) झंझारपुर, परन्तु उस समय दरभंगा ही जिला था। 1967 के आम चुनाव में दोनों क्षेत्रों से काँग्रेस की हार हुई। केवल हार ही नहीं हुई परन्तु वोटों के प्रतिशत भी नीचे गिर गया। काँग्रेस हटाओ जैसे एक सूत्री कार्यक्रम होने के कारण किसी भी राज्य में एक पार्टी की सरकार नहीं बन पायी। खिचड़ी सरकार बिहार में, बंगाल में, उत्तर प्रदेश में और अन्य-अन्य राज्यों में भी बन गई। सभी राज्य समस्याओं से ग्रसित थी। अतएव किस ओर से समस्या को पकड़ा जाय, यह भी एक मुख्य समस्या बनी हुई थी। इस बीच भूदान आन्दोलन भी कोसी बाढ़ सदृश्य उधियाने लगी। भूदान को आन्दोलन के रूप में खड़ा किया गया।

वैसे तेलांगना का भूमि-आन्दोलन चरम पर था। जमीन का छठा हिस्सा भूदान के रूप में जमीन्दार से माँगने का आन्दोलन शुरू हुआ। लोग उचित समझ लाख का लाख बीघा जमीन दान देने लगे। सभी लोगों ने इसका यह अर्थ लिया कि देश का छठा हिस्सा जमीन गरीबों के बीच आ जाएगी, जबकि ऐसा भी गाँव है, जहाँ अनेको परिवारों को घर बनाने के लिए चार डिसमल भी जमीन नहीं है। भूदान आन्दोलन हवा में उधिया कर और उड़कर जैसे आया वैसे ही चला गया। इसका प्रभाव उतना नहीं पड़ा जितना कि एक गृह-उद्योग समाप्त होने पर हुआ। खादी-भण्डार के माध्यम से कारोबार चल रहा था।

उसमें ऐसा हुआ कि कोई नुकसानदेह चूहा घूस कर अन्न और मिट्टी को एक साथ मिला दिया हो। जैसे दाना को उस चूहे निर्मित मिट्टी से अलग करना जटिल काम होता है वैसा ही खादी-भण्डार के साथ हुआ। वैसे, अभी भी कुछ लोग भूदानी जमीन पाकर खुशहाली जिन्दगी जी रहे हैं। वैसा ही खादी का कारोबार तो चलता है, परन्तु नगण्य रूप में। यह हुई 'लूट में चरखा नफा' वाली बात।

बुनियादी समस्या के पास अब भी कोई जाना नहीं चाहता। समाज भी वैसा नहीं बना है। समाज में जोड़ने वालों से अधिक तोड़ने वालों की संख्या है। बेरोजगारी भी अधिक हैं हीं परन्तु कई ऐसे भी बेरोजगार हैं, जिनके पास मोटर साईकिल, होटल, मोबाइल, अच्छा कपड़ा, भोजन के साथ-साथ 20 हजार रूपये मासिक वाली जिन्दगी भी है।

33 सूत्री कार्यक्रम को लेकर मिली-जुली सरकार बनी जिसने ग्रामीण शिक्षा-स्तर को उठाने और देहाती छात्रों के मनोबल को बढ़ाने के लिए बिहार में मैट्रिक परीक्षा से अंग्रेजी में पास करने की अनिवार्यता को हटा दिया। साथ-साथ हाई स्कूल तक की शिक्षा को मुफ्त कर दिया गया।

मिली-जुली सरकार अधिक दिन तक नहीं चली। मध्यावधि चुनाव से भी मिली-जुली सरकार ही बनी, जिस कारण बुनियादी समस्याओं का निदान नहीं हो सका, फिर भी समाज में जन-जागरण जरूर आया।

इसी बीच हरित क्रांति कृषि क्षेत्र में आई। जो खेत पाँच सेर कट्ठा उपजता था अब वह एक क्विंटल उपजने लगा था। लेकिन दुर्भाग्य यह हुआ कि अपने यहाँ, खेत वाले नौकरी-चाकरी करने के लिए शहर से विदेश तक जा चुके थे जबकि खेत गाँव में ही रह चुका था। बटाई की ऐसी नीति थी कि जिससे बट्टेदारों को लाभ नहीं होता था। कमाने और नौकरी करने से संस्कार भी तेज बन चुका था। कोई खेत बेचता भी नहीं था जिस कारण से रूपया-पैसा का हाथ में रहना, माता-पिता की प्रतिष्ठा कायम रखना अर्थात् नाक नहीं कटाने का विचार पुष्ट था।

समस्या दर समस्या समाज और सरकारी कार्यालय में व्याप्त थी। सरकारी कार्यालय कागजी झंझट का अड्डा बना था। वहीं स्कूल में बच्चों को मारा-पीटा जाता था, जिससे बच्चे पढ़ना छोड़ देते थे। मिथिलांचल की एक-एक समस्या मिथिलावासी की समस्या है।

जगदीश प्रसाद मण्डल 1967 ईस्वी की चुनावी दौड़ में जनवरी 1967 ईस्वी में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई.) के सदस्य बने। जिसका कारण ग्रामीण समस्या से लेकर देश को रूलाने वाली समस्याएँ थीं। चुनाव हुआ और मधेपुर से काँग्रेस पार्टी की हार हुई। इससे जगदीश प्रसाद मण्डल प्रकाश में आ गये।

बुनियादी समस्याओं की चर्चा...

गाँव समाज से लेकर देश की राजनीति तक में आराजकता की स्थिति बनती जा रही थी। वामपंथी सरकार को तोड़ने के कारण काँग्रेस पार्टी का साख घटता जा रहा था। कुछ प्रखर नेताओं के निधन से राजनीति की गति में ह्रास आ चुका था। राजनीति क्षेत्र में भाई-भतीजावाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद और दल-बदल की नीति जोर मारने लगी थी। इससे नेतृत्व का साख ऐसा घटा कि पार्टी के विधायक व सांसद कुर्त्ता-धोती पहनकर जनताओं के बीच आने-जाने लगे थे। बड़े-बड़े नेताओं के साथ-साथ छोटे-छोटे नेताओं को भी बलि का बकरा बनना पड़ा। बिहार की राजनीति में भी ऐसा उठा-पटक हुआ, मानो जटा-जटीन की नाच हो। प्रशासन भी लाभ उठा रहा था। ग्राम पंचायत का हाल मात्र सिनेमा-पोस्टर सदृश्य था, जिसको सबल बनाना एक अहम मुद्दा था, लेकिन इसे और अधिक कमजोर बनाकर सरकारी तंत्र के हाथ में गिरवी रख दिया गया था।

कोर्ट-कचहरी की चलती बढ़ गई। क्यों नहीं बढ़ता? उसमें हारा हुआ मुखिया, सत्तासीन मुखिया और विफल जनता-प्रतिनिधि का चक्कर लगा रहता

था। जमीन्दार-सामंत घिसाते-घिसाते घिस गया, गाँव-गाँव में उसकी जमीन गाँवों का अखाड़ा बन गया। समाज में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' जैसी स्थिति बन गई।

विचाराधारा की लड़ाई उठ खड़ी हुई। राजनीति पार्टी उठा-उपट खेलने लगी। अधिकांशत: सामाजिक आर्थिक, बौद्धिक, राजनीतिक आदि सभी मंच पर वैचारिक संघर्ष होने लगे, जिसके द्वारा सामाजिक और आर्थिक विश्लेषण होने लगे। परिणाम यह हुआ कि इन्दिरा गाँधी जी के नेतृत्व काल में काँग्रेस पार्टी के बीच वैचारिक लड़ाई छिड़ गई, जो आजादी के बाद की पहली लड़ाई थी।

गाँव-गाँव में पुरोहितवाद को भी धक्का लगा। 'जाति के आगे पाती' नहीं लगता है, यह निर्णय हुआ। मगर इससे भी उस तरह का आर्थिक शोषण कम नहीं हुआ। वैचारिक पक्ष में कुछ बदलाव आया, परन्तु व्यवहारिक पक्ष वैसा का वैसा ही रह गया। इसका कारण यह था कि पोथी-पत्रा की भाषा संस्कृत थी, जिसको पढ़नेवालों की संख्या कम थी और समझनेवालों की संख्या तो कम ही थी। फिर भी चमक-धमक चलता ही रहा। कहीं पर 'ऊँ' लेकर तो कहीं पर अन्य बात को लेकर मार-पीट हुआ करती थी।

जिस प्रकार पोथी-पत्रा की दशा हुई उसी प्रकार राजनीति मंच पर गाँधीवाद की दशा हुई- 'जितने मुँह उतने रंगों की बात'। मूल समस्या का समाधान मजबूती के साथ होना चाहिए, नहीं तो मुंडन और श्राद्ध के भोज में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा।

शिक्षण-संस्थान भी खेल का अड्डा बन गया। इस पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं। जो शिक्षक कॉलेज में गाँधीवादी सिद्धान्त पढ़ाते थे वही बाहर आकर खिल्ली भी उड़ाया करते थे। विधानसभा और लोक सभा में दल-बदलू नेता बिक जाया करते थे। फिर भी 1967 ईस्वी में 1942 ईस्वी की अंग्रेज-विरोधी हवा की भाँति हवा उठ चुकी थी। रौदी-अकाल से ग्रस्त किसानों और सामन्त-पूँजीपतियों के बीच विवाद, जाति-जाति के बीच विवाद और वर्ग-जाति के बीच बढ़ती दूरी आदि जोते गये खेत की भाँति चौकिया कर या सन्हा कर

एक जैसा हो गये। लेकिन सोलहआना नहीं हुआ।

वैसे कोसी का पुल-बाँध, नेपाल में बराज फाटक सहित बन गये, कोसी नहर में हाथ भी लग गये, लेकिन इनसे क्या लाभ हुआ? हम देख रहे हैं।

शिक्षा सम्बन्धी कुछ अन्य समस्या...

जिस तरह कॉलेजों में हलचल हुआ व हायर सेकेण्ड्री में हलचल हुआ उसी तरह हाई स्कूलों में भी हुआ। मिडिल स्कूल की चर्चा ही नहीं। विश्वविद्यालय का सर्वोच्च पद- भी.सी., जो विद्वत मण्डल के बीच था वह प्रशासनिक पदाधिकारी के हाथ जाने लगा। कैसे नहीं जाता? विद्वत और प्रशासन में तो कुछ व्यवहारिक अन्तर है हीं। कोई कारगर नियम भी नहीं लगाया जा सकता है। कुछ सरकारी कॉलेज तो कुछ गैर सरकारी कॉलेज, तो कुछ बन ही रहे थे तो कुछ पर बनाने की बात ही चल रही थी। ऐसी स्थिति में नियम में मजबूती कैसे आ सकती है। शिक्षा विभाग में ऐसा हलचल हुआ, मानो ऊपर से गिरती धारा नीचे की ओर बहती आ रही हो। जो छात्रगण वर्षो तक नेतागिरी में रहे थे वे परीक्षा पास कैसे करते। इसका नतीजा यह हुआ कि एकाएक हूड़ उठाया गया, और एक दो कॉलेजों को छोड़कर सभी कॉलेजों में परीक्षा में चोरी शुरू हो गई। कॉपी जाँच करनेवाले शिक्षको के हाथ अगहन फसल की भाँति अच्छा मौका लग गया। कई ईमानदारों की कण्ठी टूट गई। कुछ भी हुआ, परन्तु इससे कमजोर छात्र एवम् आर्थिक स्थिति से कमजोर अभिभवाकों को जरूर लाभ हुआ। लेकिन अपेक्षित लाभ नहीं हुआ। अनेक तरह के प्राइवेट कॉलेज कागज के पन्ने पर उठकर खड़े हुए। कागज पर ही पढ़ाई, कागज पर ही परीक्षा और कागज पर ही डिग्री बिकने लगी, जिससे बुनियादी समस्या पीछे छूट गई। न तो मेडिकल कॉलेजों की संख्या बढ़ी, न तो इंजीनियरिंग कॉलेजों की ही बढ़ी और न हीं टेक्निकल कॉलेजों की संख्या बढ़ी। इंजीनियरिंग कारखाना और कुशल कारिगरों का भी निर्माण नहीं हो सका। इतना ही नहीं, न तो कृषि कॉलेजों की संख्या बढ़ी और न ही कुशल

किसानों की संख्या बढ़ी।

मिथिलांचल, बिहार के पढ़े-लिखे लोगों को दक्षिण बिहार में नौकरी मिली। अनेक लोग वहाँ अपना घर-द्वार भी बना चुके थे, मगर विभाजन के बाद अर्थात् बिहार और झारखण्ड बनने के बाद, दोनों राज्यों में भाषाओं की सीमाबन्दी हो गई। कारण यह हुआ कि बिहार में यदि कल-कारखाना नहीं है तो कौन बाहर से यहाँ आएगा और क्यों? इस प्रकार भाषाओं के आदान-प्रदान नहीं होने से यहाँ की भाषा में कोई धक्का नहीं लगा।

हिन्दी विषय से बी.ए. ऑनर्स करने के बाद जगदीश प्रसाद मण्डल ने एम.ए. की शिक्षा लेने के लिए 1969-71 सत्र में सी.एम. कॉलेज, दरभंगा में अपना नाम लिखवाया। इस अवधि में वे दरभंगा में ही रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। उस समय पढ़ाई का स्तर घट चुका था। प्रोफेसर और छात्रों के बीच के सम्बन्ध में धक्का लग चुका था, जिससे शिक्षकों की प्रतिष्ठा में कमी आने लगी थी। अच्छे सोच के शिक्षक अपना मुँह बन्द कर प्रतिष्ठा बचाने में लगे थे। शिक्षक और छात्रों के बीच आक्रोश बना हुआ था, क्योंकि रूपये-पैसे, लेन-देन और पैरवी का खेल चल रहा था। जातिवाद की धारा में बहकर शिक्षक अपनी जाति के छात्रों को ही बचाने लगे थे, अन्य जाति के छात्रों के प्रति अपेक्षा-भाव नहीं रखते थे।

वैसे तो सभी क्लास की परीक्षाएँ लगभग पीछे पड़ गई थीं, परन्तु एम.ए. की परीक्षा तीन साल पीछे हो गई। जगदीश प्रसाद मण्डल चिन्तन करने लगे। परीक्षा में बिलम्ब के कारण, घरेलू स्थिति के कारण तथा समाज की सेवा के कारण, एम.ए. की क्लास सम्पन्न होने के बाद अपने गाँव बेरमा आ गये और गाँव में रहकर परीक्षा की तैयारी करने लगे। इसी अवधि में बेरमा गाँव में दुर्गा-पूजा की बात उठी। सामाजिक कार्य कर्त्ता समाज-सेवी होने तथा जिसके हृदय में समाज-विकास, क्षेत्र-विकास की भावना है, उनका ध्यान समाज की इस गति-विधि की ओर न जाय, यह तो कदापि नहीं हो सकता। जगदीश प्रसाद मण्डल जी के कान खड़े हो गये। अधिकांश लोग दुर्गा-पूजा के पक्ष में थे। यत्र-तत्र इसकी चर्चा होने लगी। मगर दुर्गा-पूजा अन्य पूजों से अलग किस्म

की होती है जो कम जगह में नहीं की जा सकती। इसके लिए अधिक जगह की जरूरत होती है, क्योंकि प्रथम कारण, यह दस दिनों की पूजा होती है और द्वितीय कारण, इस अवसर पर मेला का आयोजन, दूकान-नाच-तमाशा आदि किया जाता है।

गाँव में सहमति हुई और स्कूल के प्रांगण में बैठक की गई। इस बैठक में जितने लोग भाग लिए थे, उतने कभी भी उपस्थित नहीं हुए थे। इसके लिए नव पीढ़ी के लोग आगे आये थे।

बैठक में विचारोपरान्त पूजा-स्थल का चुनाव होने लगा। दो-तीन जगहों का नाम आया, जहाँ यह सम्भव था। लेकिन केवल जगह से ही काम नहीं चलता। इसके लिए जगह सुरक्षित भी रहनी चाहिए क्योंकि दिन-रात का मेला जो लगाया जाता है। सर्व सम्मति से स्कूल के प्रांगण का ही चयन किया गया।

दूसरा प्रश्न, बलि प्रदान का उठा। बेरमा गाँव और आस-पास में दो तरह की पूजा प्रचलित थी- वैष्णव दुर्गा-पूजा, जहाँ बलि प्रदान नहीं होता था और इससे भिन्न पूजा में बलि प्रदान मान्य था। यह समस्या जटिल हो गई। एक मत के गाँव में दोनों मतों के विचार उठ गये। जिस तरह बैठक एक मत से हुई थी उसी प्रकार दो मतों में विभाजित भी हो गई। बलि-प्रदान के पक्ष से अधिक लोग विपक्ष में चले गेये। दुर्गा-पूजा बहुत नजदीक आ चुकी थी। यदि छूट जाएगी तो साल तक छूट जाएगी, यह बात भी सभी के मन में थी।

वाद-प्रतिवाद व घमर्थन हुआ और बलि-प्रदान पर रोक लग गया। मगर विवाद बढ़ गया। विवाद के निम्न कारण थे-

प्रथम, पंचायत के मुखिया की दवंगता, द्वितीय समाज में नव चेतना और तृतीय पंचायत के प्रथम व पुराना मुखिया, जो 1952 से पंचायत में सक्रिय रहे थे, उनका 1962 ईस्वी के चुनाव में हारना, मतभेद का यह भी कारण था।

इस आग की चिंगारी ऐसी उड़ी कि गाँव में पूजा से, दस-बारह दिन पहले एक जबर्दस्त घटना घट गई। वर्त्तमान मुखिया ने कुछ गिने-चुने लोगों के

विचार से दूसरे स्थान पर, तात्पर्य स्कूल से अलग स्थान पर पूजा का नींव ले लिया।

यह सुनते ही समाज में हलचल मच गया, जैसे पत्थर फेंकने से शान्त जल में हिलकोर बढ़ता है। समाज आक्रोशित हो गया। मगर आगे बढ़ने की हिम्मत किसी में नहीं थी। मन में उत्साह तो था, परन्तु डर भी था, क्योंकि क्षेत्र के कुछ मुँहगर व मान्य लोगों का समर्थन भी उसी मुखिया को प्राप्त था।

साम्यवादी विचारधारा के वाहक, समाज-चिन्तक एवम् समाज के नव निर्माण करनेवाले श्री जगदीश प्रसाद मण्डल को मुखिया की यह दवंगता रास नहीं आयी। उन्होंने कुछ लोगों को साथ लेकर दूसरी बैठक करने पर विचार किया। समाज के बीच यद्यपि आक्रोश फैला हुआ था, फिर भी कोई सामने आकर विरोध नहीं कर रहा था, जबकि जगदीश प्रसाद मण्डल समन्वय का काम कर रहे थे। जबर्दस्त समस्या उठकर खड़ी हो गयी, परन्तु पूजा होनी चाहिए, हमें झुकना नहीं है अन्यथा यह मौका हाथ से निकल जाएगा, समाज में ऐसी सोच भी थी। इसलिए कुछ लोगों के बीच फिर बैठक हुई।

इस बैठक में यह तय हुआ कि दूसरी पूजा भी होनी चाहिए और वही हुआ। संग-संग यह भी तय हुआ कि समाज से बाहर चन्दा नहीं किया जाय, भले जो ही सामाजिक स्तर पर चन्दा होगा, उतना भर से ही पूजा की जाएगी। पान नहीं तो पान की डन्टी से पूजा की जाय और काम चलाया जाय। दूसरी ओर मुखिया तरफ ढेर चन्दा हुआ। सरकारी स्टाफ से लेकर अन्य दूसरे पंचायतों से भी चन्दा आया। गाँव का बन्धा हुआ चन्दा भी साथ-साथ आया। कहना जरूरी है कि चन्दा कोई अपने विचार से देता है जबर्दस्ती नहीं लिया जाता है, परन्तु दवंगता के आधार पर वैसा भी किया गया। चन्दा के नाम पर जुर्माना का रूप गढ़ा गया, परन्तु खुलकर नहीं, चुपचाप। परिस्थिति भी अनुकूल, जो आदमी झगड़ा-लड़ाई व झंझट में फँसा था, वह कहाँ जाता, मगर गाँव-समाज में कोई बात छिपी नहीं रहती है। तीन खेमों में समाज बँट गए- प्रथम दुर्गा स्थान का प्रथम खेमा, द्वितीय दुर्गा स्थान का दूसरा खेमा और तीसरा दोनों तरफ रहनेवालों का खेमा- दो-दिशिया, उभयनिष्ठ फिर भी उभयनिष्ठ सभी

लोग बन्धा हुआ चन्दा में फँसे।

दुर्गा-पूजा शुरू हो गई। दोनों स्थानों के बीच कुछ खास अन्तर नहीं हुआ, परन्तु अन्तर यह हुआ कि समाज-सेवी जगदीश प्रसाद मण्डल, जो एम.ए. की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, उन्होंने इस सामाजिक हलचल को शान्त करने के लिए, लोगों को समझाने के लिए परीक्षा की तैयारी पर ध्यान न देकर कुछ लोगों के साथ नये दुकानदारों को खड़ा किया, जो इनकी एक अहम् त्याग थी। मिठाई, से लेकर अन्य-अन्य प्रकार की दुकान खुल गई। यह भी व्यवस्था हुई कि मेला में बट्टी (टेक्स) नहीं ली जाएगी, क्योंकि समाज के ही लोग दुकान करेंगे, जिनसे पूजा का चन्दा ले लिया गया है। लेकिन कुछ लोग इसके विपरीत ताल ठोककर उठ खड़े हो गये और कहा कि जैसे वे लोग करेंगे वैसे ही पूजा का आयोजन हम लोग करेंगे, भले ही व्यक्तिगत चन्दा लग जाय। ऐसे लोगों की संख्या केवल पाँच-सात ही थी। इसलिए यह गोटी नहीं चली थी। तय यह हुआ कि हमलोग दूसरे स्थान की पूजा-स्थल पर नहीं जाएंगे।

इन दोनों पूजाओं को लेकर दोनों ओर मुँह देने वाले लोग बुरी तरह से फँस गये। वे जिधर भी जाते, लू-लू, थू-थू व छि:-छि: लोग करते। इस पूजा से पुरानी पीढ़ी के विचार को धक्का लगा और नव पीढ़ी के हाथ में समाज आ गया। इसके साथ यह भी हुआ कि बेरमा गाँव के बगल के गाँव जगदर और कछुबी भी बँट गये, जिस कारण दोनों गाँवों का समर्थन दोनों स्थानों को मिला। इसमें जगदीश प्रसाद मण्डल जी की सराहनीय भूमिका रही। ये अपनी सेब्रो साईकिल से दौड़ लगाया करते थे।

मार्मिक घटना की याद...

संयुक्त परिवार में जगदीश प्रसाद मण्डल के साथ उनका फुफेरा भाई भी रहा करते थे, क्योंकि उनके माता-पिता स्वर्ग सिधार चुके थे। उदार दिल के मामा-मामी के रहने के कारण सामंजस्य अच्छा था। जगदीश प्रसाद मण्डल के

दो फुफेरा भाई थे- ज्येष्ठ गोनर मण्डल और कनिष्ठ कारी मण्डल। इनका गाँव हरिनाही था, जहाँ इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। बेरमा में रहने का कारण यह हुआ कि कोसी में जब भयंकर बाढ़ आई तो विनाशकारी कोसी की धारा ने इनके डीह-जमीन तथा घर को लील लिया और इन्हें बेघर कर दिया, इसी कारण वे मामा-मामी के यहाँ आकर रहने लगे।

समय पंख लगाकर उड़ता गया। अचानक एक मर्मस्पर्शी घटना घटी। विनाशकारी कोसी को हटने से उनके बाप दादे की डीह-जमीन जग गए। कोसी की धारा जो पश्चिम की ओर मुख करती जा रही थी, अब वह पूरब की ओर करने लगी, जिससे कुछ प्रवाहित गाँव, जैसे हरिनाही, मैनही, अमही, हरड़ी आदि गाँवों के कुछ डीह-जमीन भी जग गये। अब भागा हुआ तथा गाँव छोड़कर चले जानेवाले लोग, फिर से जो अपनी डूबी पुश्तैनी सम्पत्ति की आशा में कान लगाये थे, वे पुन: वापस अपने-अपने गाँव आने पर विचार करने लगे। इसी क्रम में जगदीश प्रसाद मण्डल जी के फुफेरा भाई भी बेरमा से अर्थात् मामा गाँव से अपने पैतृक गाँव हरिनाही लौटने पर विचार किया।

समाज में ऐसे भी स्वार्थी लोग रहा करते हैं जो गाँव की सभी सम्पत्ति और चीजों को देखकर अपनी स्वार्थी प्रवृत्ति से सब हमारी ही हो जाय, कहते हैं। ऐसी प्रवृत्ति गलत भी नहीं है, केवल सुधार की जरूरत है- यदि सम्पत्ति के साथ-साथ सभी लोगों का भार उठा ले, तो जय हो। हरिनाही में घरों की स्थिति ऐसी रही थी कि कोई घर यहाँ तो कोई घर वहाँ, मतलब एक जगह नहीं, हाँ पाँच-सात परिवार एक जगह भी देखे जाते थे, फिर भी अधिकांश घर अलग-अलग और दूर-दूर पर थे। सम्बन्धी और कुटुम्ब के कारण नेपाल देश तक लोग पहुँच कर बस गये थे। बाढ़ की विभीषिका ने लोग और उनके घर-द्वारों को इस तरह उजाड़ दिया था कि जो परिवार अपने घर से कभी बाहर नहीं निकलते, खासकर महिला नहीं निकलती थी, क्योंकि उसे पाँच-पाँच मन की कई बखारी रहा करती थी, अब उसे कच्ची एक पसेरी अन्न के लिए दूसरे यहाँ दिन भर श्रम करना पड़ता था। सुभ्यस्त परिवार वालों की यदि ऐसी हालत थी, तो औरों की बात और दशा भगवान जाने। यह बात यथार्थ है कि साँप को मारने के लिए

यदि ओजार नहीं मिलता है तो लोग पीछे हटने में ही भलाई समझते हैं। उनलोगों को जीवन ऐसे जामुन जैसा हो गया, जो पक जाने पर हरहरा-हरहरा कर नीचे गिर जाता है। सरकारी सहायता कितनी होती! इस स्थिति में लोग वहाँ से भाग गये और कई अपने कुटुम्ब के यहाँ तो कई अन्य गाँवों में शरण ले लिये तो कई उस नक्शे से खो गये, अर्थात् भारत छोड़कर दूसरे देश चले गये।

आज भी हरिनाही और उस क्षेत्र में गरीब एवम् लाचार लोगों को घर बनाने के लिए इन्दिरा आवास नहीं मिल रहा है, उनकी व्यथा कौन सुनेगा?

गाँव-घर जग गया है, यह हल्ला सुनकर जगदीश प्रसाद मण्डल जी के फुफेरा भाई गोनर मण्डल ने भी अपना गाँव और डीह देखने के लिए हरिनाही जाने का विचार किया और बेरमा से प्रस्थान किया। लेकिन रास्ता बहुत ही कठिन था और ऐसा घुमावदार था कि मानो सात समुद्र पार किया जा रहा हो- 'राइडर्स ऑन द सी'।

गोनर मण्डल मिथिला दीप में ट्रेन पकड़कर घोघरडीहा स्टेशन पर उतर गए और हरिनाही जाने के लिए रास्तों के बारे में लोगों से पूछा। लोगों ने बताया कि यहाँ से हटनी, हटनी से नौआ-बाखर, नौआबाखर से अमही और अमही से हरिनाही पहुँच जायेंगे। जब गोनर मण्डल ने दूरी के बारे में पूछा तो लोगों ने 'दो कोस' बतलाया। दो कोस की दूरी समझकर उसने यह अन्दाज किया कि वहाँ पहुँचने में अधिक से अधिक दो घन्टा लगेगा। लेकिन उसे यह जानकारी नहीं थी कि घोघरडीहा और हटनी के बीच में ही उसे तीन जगह नदी पार करनी पड़ेगी। इसके साथ-साथ गाँव-घर की सवारी, जो लोगों के विचार से नहीं चलती है। इसी कारण से हटनी पहुँचते-पहुँचते चार घन्टे लग गये। अब हटनी से नौआबाखर जाना था, बीच में लम्बी नदी भी पार करनी थी।

रास्ते में कठिनाई हीं कठिनाई थी मगर गोनर मण्डल ने हिम्मत नहीं हारी और सूर्य डूबने के बाद हरिनाही पहुँच हीं गए। पहले से ही गोनर मण्डल का एक दियादी- भाई चुल्हाई मण्डल वहाँ आकर डेढ़ बीघा जमीन का मालिक बनकर रसा चुका था और वह खेत की अच्छी ऊपज प्राप्त कर अपने कुटुम्ब

की प्रतिक्षा कर रहा था। हरिनाही पहुँचते ही कठिन रास्ता देखकर गोनर मण्डल दो दिनों के लिए उनके पाहुन बन गए। गोनर मण्डल के जो पहले वाली बासभूमि थी वह नीचे चली गई थी और बाध-बधार ऊँच हो चुका था। वर्त्तमान में हरिनाही गाँव मधुबनी जिला में है परन्तु खेत-पथार-अगवास सुपौल जिला के हरड़ी मौजा में पड़ता है। वह हरड़ी जहाँ सरल स्वभाव के नेता स्व. गंगा प्रसाद यादव और उनकी पत्नी हेमलता यादव का घर है। हेमलता यादव फुलपरास विधानसभा से विधायक रह चुकी है। गोनर मण्डल ने देखा कि करीब पन्द्रह परिवार वापस आकर हरिनाही में बस चुके हैं, जिसमें से दो परिवार वालों के खुट्टा पर बैल भी बन्ध चुके थे। शेष कुदाली जिन्दगी जी रहे थे, जो उस समय के किसानों का मौलिक औजार था। गोनर मण्डल अपना उगा हुआ खेत, घराड़ी एवम् पोखर देखकर बहुत खुश और आकर्षित हुआ। उसने चुल्हाई मण्डल से कहा- "भैया, अगले आठवें दिन मैं अवश्य यहाँ पहुँचूँगा।" चौथे दिन बेरमा वापस आकर मामी से गोनर मण्डल ने कहा- "मामाजी, मैं अपना गाँव हरिनाही जाऊँगा।"

मामी- "मगर कैसे जाओगे?"

गोनर- "बाँस तो हमारे पास है हीं। एक बाँस ले जाकर पहले घर बनाऊँगा। इसके बाद देखा जाएगा।"

जैसे कोई ब्रह्मचारी ब्रह्माश्रम से निकलकर सतरंगी दुनिया, सम्मोहित करनेवाली दुनिया को देखकर भावाभूषित होता है, उसी प्रकार गोनर मण्डल भी हुआ। कैसे न होता?

गोनर मण्डल को पूर्व में खोया हुआ गाँव-घर, सर-समाज, दियाद-वाद जो इतिहास बन चुके थे, वे सामने आने लगे थे, वह क्यों न आकर्षित होता। वैसे उसका मामा जी बहुत ही उदार दिल के थे, उपकारी स्वभाव के थे अर्थात् जगदीश प्रसाद मण्डल जी के पिताजी। उन्होंने उसे एक बीघा घनहर और ढाई कट्ठा बास डीह की जमीन खरीद दी थी। वे दोनो भाई- गोनर मण्डल और कारी मण्डल, हरिनाही को भूल चुके थे। सुख-सुविधा मिलने से लोग बहुत कुछ भूल जाता है। उसके हाथ में खेत और जमीन का दस्तावेज़-खतियान थे, जिस

कारण आशा जीवित थी। जिस जगह यह भी नहीं बच सका, उसका हाल पानी में डूबा हुआ पत्थर जैसा हो चुका था। मगर तैराकी सदृश्य कुशल तैराकी रहने से पता लगा ही लेगा। अनाड़ी तो अनाड़ी ही है।

सातवें दिन एक बाँस को काट-छाँट कर गोनर मण्डल ने तैयार किया क्योंकि उसे अपने वचन को पूरा करने के लिए आठवें दिन हरिनाही पहुँचना था। उसने विचार किया कि हरिनाही में चार दिन रहकर पहले रहने लायक घर बना लूँगा, इसके बाद आगे देखा जाएगा।

मामी से बोला- "मामीजी, चार दिन वहाँ ठहरकर घर बना लूँगा और पाँचवाँ दिन यहीं पर वापस आऊँगा।"

मामी, अर्थात् जगदीश प्रसाद मण्डल जी की माँ, बोली- "बहुत बढ़िया बात। एक अढ़ैया चावल और एक अढ़ैया चूड़ा से काम चल जाएगा?"

गोनर मण्डल असमंजस में पड़ गया। यह सोचने लगा कि जितना खाने-पीने का सामान लूंगा उतना ही रास्ता में वजन बढ़ेगा, है की नहीं। और शरीर तथा मोटरी वजनदार भी होगा। उसमें भी सात-आठ कोस का रास्ता, नदी-नाला का रास्ता, उस पर बाँस और खाने-पीने का सामान। बहुत अधिक वजनदार हो जाएगा। इस कारण, बेरमा में भरपेट नास्ता करके उसने रास्ते के लिए बाँध भी लिया। अपना कपड़ा-वस्त्र, लोटा-थाली नहीं लेना, किसी के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए अन्त में उसने एक छिपली-प्लेट, बिछाने के लिए दो बोरा, एक अढ़ैया चूड़ा एक अढ़ैया चावल आदि लेकर दूसरे दिन हरिनाही के लिए प्रस्थान किया। इस तरह का कठिन कार्य उसने जिन्दगी में नहीं किया था। लेकिन इतना तो जरूर किया था कि बाँसवाड़ी से बाँस काटकर लाना और बाध-बोन से धान का बोझ उठाकर लाना, उसी प्रकार खेत से हलजोता दो गोरा चौकी लाने के लिए जाता था, परन्तु इतना वजनदार कार्य से भेँट पहली बार हुआ था।

गोनर मण्डल बेरमा से निकलकर कछुबी-तमुरिया होते हुए सुन्दर-विराजीत पहुँचते-पहुँचते बेदम हो गया। पता किया तो दो कोस ही चला था।

आगे देखा तो अभी पौनी-चपराम, कलिकापुर, मेटरस तो कोसी बाँध के समीप ही है। मेटरस में कोसी पार कर भीतर जाना होता है। तो भी मेटरस पार कर दो कोस भीतर जाना पड़ेगा। कुछ ही क्षणों के बाद गोनर मण्डल को असम्भव लगने लगा। जिन्दगी के कठिन डगर का अहसास कर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। कुछ चिन्तन और कुछ विश्राम करने के बाद उसे जिन्दगी को आगे ले जाने का पुन: होश हुआ। उसने पानी पीया और फिर बाँस उठाकर चल दिया। लेकिन होना तो वही था जो हुआ। मैटरस बाँध पर चढ़ते-चढ़ते ही उसके शरीर में ज्वर-बुखार आ गया। ऐसी जगह में कौन मिलता? कोई जान-पहचान वाला नहीं था। गाँव-घर में बच्चा फुंसी को भी बड़ा गुड़ घाव कहता है क्योंकि वह अपने माता-पिता के पास रहता है, परन्तु माता-पिता के नहीं रहने पर बड़ा गुड़ घाव फूँसी हो ही जाती है।

बेरमा के मैटरस गाँव में पच्चीस से भी अधिक कुटुम्ब थे और अभी भी है, हीं। कोसी बाँध पर बाँस रखी हुई देखकर और वहाँ गोनर मण्डल को पड़ा देखकर एक व्यक्ति के ह्रदय में सहानुभूति जग गई। अन्य राहगीर तो देखकर या उसे घायल समझकर आगे बढ़ जाता था। वह उसके पास आया। वह बघार से गाँव-घर पर आ रहा था। उसने पास आकर पूछा- “कहाँ रहते हैं?”

जाड़-बुखार से काँपते हुए गोनर मण्डल बोला- “बेरमा।”

“कहाँ जाना है?”

“हेरनाही।”

“ऐसे स्थिति में कैसे जायेंगे?”

“यही तो समझ में नहीं आता है।”

“एक काम कीजिए। मैं भी कोई अन्य लोग नहीं हूँ। मेरी बहन भी बेरमा गाँव में ही बसती है। इसलिए मैं कुटुम्ब ही हुआ।”

कुटुम्ब नाम सुनते ही अचानक गोनर मण्डल को होश आ गया और उसने कहा- “कुटुम्ब नारायण, किसी तरह यदि मैं गाँव वापस चला जाऊँगा तो जान बच जाएगी, नहीं तो नहीं बचूँगा।”

"यहाँ से घोघरडीहा जा सकते हैं?"

"खाली देह चला जाऊँगा।"

"सभी सामानों को मेरे यहाँ रख दीजिए और आप चले जाइए। वही बाँध से सटा पूरब मेरा घर है।"

आशा और सहानुभूति प्राप्त कर गोनर मण्डल बोले-

"मेरे संग में चूड़ा है। चलें, कुछ खा लेता हूँ और शेष रखकर चला जाता हूँ।"

गोनर मण्डल जोशिला लोग था। जोश पर तो घोघरडीहा स्टेशन के लिए विदा हुआ, परन्तु रास्ते में ऐसी स्थिति बनी अथवा ऐसा बेहाल हुआ कि न तो रास्ता देख पाता था और न ही आगे कदम उठा पाता था। उस समय में निर्मली से घोघरडीहा आनेवाली रेलगाड़ी अपराह्न चार बजे में खुलती थी। संयोग ऐसा हुआ कि कछुआ चाल में चलने के वावजूद भी गाड़ी पकड़ा गई। सात बजे शाम में गोनर मण्डल बेरमा वापस आ गया।

एक तो दिन भर का थका हुआ दूसरा जाड़-बुखार से पीड़ित था, वह अर्थात् गोनर मण्डल। कैसे बर्दास्त होता? जोर-जोर से रोने लगा, जैसा कि कोई बच्चा अपने माता-पिता के सामने रोता है।

अपने पाले-पोसे की ऐसी दुर्दशा देख कर उसकी मामी अर्थात् जगदीश प्रसाद मण्डल जी की माँ ऐसे डाक स्वर में रोने लगी कि ऐसा लगा कि अब उसका भांजा (गोनर मण्डल) नहीं बचेगा। इस बीच दोनों भाईयों का विवाह अर्थात् गोनर मण्डल और कारी मण्डल का विवाह-दुरागमन हो चुका था। दोनों बड़ी-छोटी दियादनी भी बेरमा में थी। अरे राम, ले बलैया! दोनों झमझौहर करने लगीं, आँखों से आंसू टपकाने लगीं। जैसे शाम के समय कोई सियार झाड़ी से निकलकर 'भू- हुआ' करता है और आस-पास के सभी सियार भी सम्वेत स्वर में भूकने लगते हैं। क्यों नहीं भूकेगा? डर से जो दिन भर झाड़ी में छिपा रहता है, उसका तो अंधेरा ही न संगी-साथी होगा। जिस प्रकार चोर दोनों तरह के होते हैं- 1. दिन का चोर और 2. रात का चोर, उसी प्रकार न सियार को भी

चरने का समय मिलता है, शिकार करने का समय मिलता है।

उसी जगह रोनेवालों की संख्या चार हो चुकी थी, जिस कारण वह करूण आवाज इको साउण्ड की भाँति दूर-दूर तक फैल रही थी। वह आवाज सुनकर टोला-बस्ती के एक-दो करके लोग आने लगे। गोनर मण्डल की स्थिति देखकर कुछ लोग सुबकने लगे, कुछ लोग रोने लगे तो कुछ लोग कुछ-कुछ बोलने लगे।

पाँच दिन पहले ही भदवा बीत चुका था, लेकिन एक बूढ़ी औरत ने अन्तिम दिन भदवा का पता लगाया। वह उसी दिन के हिसाब से जोड़ रही थी कि भदवा का आज छठा दिन है। इसलिए वह वोली- "हाय देव, कैसे प्रथम बार ही भदवा में कदम बढ़ा दिया। जान बूझकर आग में जलने के लिए जाएगा तो जलेगा नहीं।"

जिस जगह सभी रोनेवाले ही जमा हो गये हों, वहाँ चुप करानेवाला कौन होगा? खैर, देख-रेख हुई, दवा दी गई तो गोनर मण्डल ठीक हो गया।

एक महीने के बाद गोनर मण्डल काज-धन्धा करने लायक हुआ। अगहन की धान कटनी शुरू हो चुकी थी। किसानों को अपनी अगहनी फसल की ही अधिक आशा रहती है। इसलिए एक पर्व-त्योहार की भाँति समझकर वे अगहनी फसल काटा करते थे, कहीं नहीं जाते। वे बाढ़ की विभीषिका से अधिक डरते थे। 1958 ईस्वी में भी भीषण बाढ़ आ गई थी। कहने के लिए तो बाढ़ दहार, नुकसान, फसल बहाकर ले जाना और उपजाउ खेतों को अवांछित मिट्टी से भर देने का कारण बनती है, परन्तु दूसरी ओर इससे किसान लाभान्वित भी होते हैं, पानी की आवश्यकता को पूरा करती है, उपजाऊ मिट्टी लाकर देती है। फिर भी यह गाँव की जमीन की बनावट पर निर्भर करता है- गहरी जमीन में पानी भर जाता है, परन्तु ऊँची जमीन में पानी तब तक ही टिकता है जबतक वर्षा होती है तथा बलुआहा गाँव सूखा का सूखा ही रहता है। ऐसे गाँवों के लिए बाढ़, खिलौना है। इसलिए यदि बाढ़ बाँध-सड़क को काट कर खेल खेलती है तो क्या फर्क? फिर भी ऐसा नहीं होना चाहिए।

दुश्मन सिपाही के हाथों से घिरा सिपाही जैसा परिवार का हाल हो चुका

था। एक बाढ़ या रौदी कृषि आधारित परिवार को पाँच साल तक धक्का देता है और परिवार पाँच साल पीछे चला जाता है।

फाल्गुण के शुरू में ही जगदीश प्रसाद मण्डल के दोनों फुफेरा भाई बाँस और खाने-पीने के सामान के साथ हरिनाही गये। बाँस के खुटे पर मनेजर (पेड़) के कोरो-बती खड़ा किया और काश-पटेर से छाड़ लिया। रहने की व्यवस्था हो जाने पर पोखर वाली जमीन पर ध्यान दिया और उसे साफ-सफाई तथा ताम-कोर करने लगा। खट्ठा, पटेर-झौआ के वन-झाड़ी हरिनाही। जिस तरह वियतनाम के लोगों ने एक-एक ईंच भूमि जो लड़ाई के समय बम-बारूद से नष्ट हो चुकी थी, उसे खेती योग्य बनाया उसी प्रकार हरिनाही के लोग वन-झाड़ी उजाड़ने लगे। वन-झाड़ी ऐसा कि जो दस धुर भी ताम-कोर लेता था, वैसे कोरनेवाले अपने को मेहनती मानता था।

दोनों भाई- गोनर मण्डल और कारी मण्डल वन-झाड़ी भी उजाड़ते थे और समय-समय पर बेरमा से खाना-पीना व खर्चा भी ले आते थे। छह महीने के बाद पहली उपज हाथ लगी। दूधगर गाय- जैसा एक साथ जल्ली, मकई, काउन आदि हाथ लगे। परिवार के काज बढ़ गये। खेती के लिए एक बैल भी खरीद कर ले गये। परिवार की एक रूप-रेखा तैयार हो गई।

अभीतक हरिनाही गाँव में बीस परिवार बस चुके थे, अवस्थित हो चुके थे। तीन चापा कल भी गड़ चुके थे। पानी की भी सुविधा हो चुकी थी। बीस फीट पाइप और छह फीट के फील्टर से चापाकल हो जाता था। नकदी फसल पटुआ की खेती शुरू हुई। तीस-पैंतीस बीघा जमीन उपजाउ का गाँव हरिनाही बन गया।

1962 ईस्वी में गोनर मण्डल का छोटा भाई कारी मण्डल बीमार पड़ गया। ईलाज की कोई सुविधा हरिनाही में नहीं थी। उसी समय दरभंगा जिला के झगड़ुआ नामक गाँव के एक डॉक्टर बेरमा में डॉक्टरी करता था। वह मुसलमान था। जगदीश प्रसाद मण्डल का मातृक मनसारा है जो झगड़ुआ से सटा गाँव है। इस कारण से उस डॉक्टर से मामा-भाँजा का सम्बन्ध बना हुआ

था। वह डॉक्टर अक्सरहाँ जगदीश प्रसाद मण्डल जी के घरपर रहता था। कारी मण्डल के बीमार होने की सूचना पाकर माँ ने उस डॉक्टर से कहा- "भैया, हरिनाही में भागीन बहुत बीमार है।"

वह डॉक्टर जाने के लिए तैयार हो गया।

उस समय बेरमा में दो वैद्य थे- प्रथम, पण्डित सुन्दर ठाकुर जो आचार्य थे, लेकन लँगड़ा थे और तुतलाकर बोलते थे। उन्होंने जिन्दगी के रंग को बहुत ही नजदीक से देखा था और औषधालय खोल रखा था। विस्तृत औषधालय, जिसके विशाल प्रांगण में सौ रंगों की जड़ी-बूटी लगी हुई थी। वैदागरी ऐसा पेशा है, जो जिन्दगी के अन्तिम घाट तक बसा करती है। कब किस प्रकार के रोगी आ जाय, यह कहना कठिन है। फिर भी उसमें एक मजबूती कर्म-विधान था, यह कि जब वह पूजा करने लगता था, तो उसे कोई टोक नहीं पाता था। इसके लिए एक पहरेदार भी रखते थे। बाद में रोगी की सेवा को लेकर उनका दिनचर्या बदल गया और दिन की पूजा छोड़कर रात में पूजा करने लगे। जड़ी-बूटी लगाने का नशा के साथ-साथ दवा बनाते भी थे। वे अपने घोड़े पर चढ़कर अपना बाहरी काम भी किया करते थे।

दूसरा वैद्य, नीरस महतो था। वह पण्डित सुन्दर ठाकुर जैसा पढ़ा-लिखा तो नहीं था, लेकिन मनुष्यों का तो अजीव बनावट भी तो होता है। कोई कॉलेज से पढ़कर इंजीनियर-डॉक्टर बनता है तो कोई गाँव-घर में घूम-फिर कर ही बन जाता है। उसी प्रकार कोई पढ़कर रामायण और महाभारत सीखता है तो कोई सुनकर और गाकर सीखता है। मिट्टी से जुड़कर उपजा वैद्य नीरस महतो थे। गाँव में दोनों का ईलाज सफल था। अब गाँव में एलोपैथी ईलाज का भी पर्दापण हो चुका था। बेरमा गाँव के बगल के दुनी बाबू और बुचकुन बाबू का आना-जाना इसके लिए बना हुआ था।

अन्य तीसरा वैद्य वर्णित झगड़ुआ वाला था। वह पन्द्रह वर्षों तक बेरमा में रहा था। जगदीश प्रसाद मण्डलजी की माँ उसे 'भैया' कहती थी और वह भी 'बहन' कहता था। अन्य लोग 'मोलवी' कहते थे- असली नाम लुप्त।

जगदीश प्रसाद मण्डल के ज्येष्ठ भाई कुलकुल मण्डल, उसकी माँ और

वह डॉक्टर मामा, तीनों तमुरिया में गाड़ी पकड़कर घोघरडीहा कोसी बाँध तक तो उत्साह से गये, लेकिन बाँध पर से देखा तो माँ का भी और भैया का भी मन डर गया। आगे कदम बढ़ाने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। बाँध के बगल में नदी की लम्बी धारा। जिसका पानी काफी तेज गति में चल रहा था। मामा स्थिति को समझकर धैर्य बढ़ाते हुए बोला- "बहन, यह कौन नदी है, इससे लम्बी-लम्बी नदी में नाव चलाया करता हूँ और तैरता भी हूँ। कितनी अच्छी नाव भी तो है। जिस तरह सभी लोग पार होंगे, उसी तरह हम लोग भी पार होंगे।"

इसी बीच हरिनाही के एक लोग मिल गया। बाँध पर ही पूछ-ताछ से पता लग गया था। शहर-बाजार में बिना मतलब का पूछना ठीक नहीं होता है, लेकिन नदी क्षेत्र, वन क्षेत्र, मरूभूमि क्षेत्र में पूछने से शुभ होता है, जिससे संगी-साथी मिल जाता है।

तीनों लोग हरिनाही पहुँचे। डॉक्टर का नाम सुनते ही अन्य दूसरे परिवार के लोग भी जमा हो गये। पहुँचते ही सूई-दवा शुरू कर दिया, अर्थात् कारी मण्डल का इलाज शुरू हुआ।

चाय का अभयस्त डॉक्टर साहब। वैसे चाय ही केवल उसका आदत था। हरिनाही गाँव में चाय की दुकान की कौन बात, चायपत्ती-चीनी की भी दुकान नहीं थी। बेरमा से चला और घोघरडीहा में जब गाड़ी से उतरा तब भी चायपत्ती-चीनी की याद नहीं आयी। याद भी कैसे आती? बिना देखा हुआ व अपरिचित स्थान कैसा है या कैसा नहीं है, इस ओर ध्यान क्यों जाता। प्रथम दिन तो किसी प्रकार से काम चला लिया, समय बिताया, परन्तु दूसरे दिन डॉक्टर साहब तबाह होने लगे। बिना चाय पीये मन खराब हो गया, काम करने में मन नहीं लगता था। उधर माँ और भाई को यह समझ में आता था कि हमलोग किस जगह आ गये।

पहले दिन के ईलाज से कारी मण्डल में कुछ सुधार हुआ। मामा को अर्थात् डॉक्टर साहब को एक तरफ बिना चाय के उकासी हो रही थी तो दूसरी तरफ रोग के ईलाज से खुशी भी हो रही थी।

अभी तक हरिनाही गाँव में दस-ग्यारह गाय-भैंस भी पाले जा रहे थे। सहरसा जिला, अब सुपौल जिला और मधुबनी जिला के सीमांचल में हरिनाही और हरड़ी गाँव बसा हुआ है। इनके बीच एक नदी बहती है जिसका नाम 'मरना धार' है जो हरिनाही और हरड़ी दोनों गाँवों को उजाड़ दी थी। गोनर मण्डल का घर गाँव में सबसे पश्चिम है, क्योंकि जैसे बाजार आगे की ओर मुँह करते हुए बढ़ता जाता है, वैसे ही न नया गाँव भी बढ़ता है।

पूरब-पश्चिम हरिनाही गाँव, वैसे यह सूर्यमण्डल गाँव हुआ। जो निवास के हिसाब से अच्छा नहीं हुआ, क्योंकि आग और हवा- आँधी से अधिक उजाड़ होगा, नुकसान होगा। नदी के दोनों किनारे एक समान, जैसा पश्चिम का वैसा ही पूरब का। गोनर मण्डल ने अपने दियाद चुल्हाई मण्डल से बोला कि सभी दियाद पास-पास अपना-अपना घर बनाइये। गाँव में उस समय गोनर मण्डल का घर सबसे पश्चिम में था, परन्तु वर्त्तमान में गाँव उससे भी आगे बढ़ चुका है।

मार-पीट की घटना...

दिन के करीब तीन बजे, हरिनाही गाँव की भैंस और हरड़ी गाँव की पश्चिम टोल की भैंस, जिस टोल में फुलपरास के पूर्व विधायक हेमलता यादव का घर है, नदी के तट पर या किनारे-किनारे गाय-माल चर रही थीं। बीच में मरना नदी थी। हरिनाही बीस-पच्चीस घरों का गाँव और हरड़ी तीन टोले में बँटा हुआ, जो कुछ दूर हट-हट कर बसे हुए थे। उसी नदी के पेट में या किनारे-किनारे सभी भैंस चर रही थीं। एकाएक चरवाहों के बीच झगड़ा-लड़ाई शुरू हुई। दोनों गाँव नजदीक-नजदीक, हँसेरा-हँसेरी हो गई। बड़ी मार-पीट लाठी-फराठी से हुई। कई लोगों के शिर फूट गये, हाथ-पैर भी टूट गये। दो जातियों का दोनों टोल, खूब लड़ाई चली। कम परिवार रहते हुए भी हरिनाही में कुछ परिवार, जो सिंहेश्वर स्थान की ओर से आकर बसे थे, उसमें तीन बलशाली खलिफा भी थे, इसलिए हरड़ी वालों ने अधिक चोट खायी। लेकिन केस-मुकदमा-फौजदारी नहीं हुई। इसके कारण भी थे- इधर फुलपरास थाना को

चार नदियाँ पार कर आना पड़ता और उधर सुपौल की सलीला कोसी के कई छाँट-छूँट से निर्मित्त नासी-धार पार कर जाना पड़ता।

गोनर मण्डल के घर से पाँच बीघा पश्चिम वह लड़ाई हुई थी। मर्द-पुरुष तो लड़ाई-मार करने गये थे लेकिन, स्त्रियाँ और बच्चे आदि ने उस तमाशा को देखा। बेरमा के भी तीन लोग डॉक्टर साहब, जगदीश प्रसाद मण्डल की माँ और भाई साहब ने भी उस लड़ाई को देखा। उस नुकसानदेह लड़ाई को देखकर तीनों बहुत भयभीत हो गये। भयभीत होने के कारण भी तीन ढंग के थे- डॉक्टर साहब थाना-कचहरी को जानते थे। इसलिए भयभीत थे। मालूम था कि जब थाना-पुलिस आती है, तभी लड़ाई करनेवाले गाँव छोड़ देते हैं। मगर मैं..?

उसी प्रकार जगदीश प्रसाद मण्डल की माँ को और उसके भाई साहब को भी बेरमा के 1956-57 ईस्वी के पुलिस के दौड़ देखा हुआ था। संध्या काल में सभी ने विचार किया कि कल सुबह यहाँ से मरीज, कारी मण्डल को लेकर बेरमा चले जाना है। वही किया भी।

बेरमा में तीन भैंस और दो बैल खुटे पर रहा करते थे। मगर आदमी घटने से भैंस तीन से घटकर एक हो गई। बैल का तो नाम ही नहीं रहा। चार-पाँच साल पहले 1956-57 ईस्वी में कुलकुल मण्डल मिडिल स्कूल छोड़कर अमानत में अपना नाम लिखाया, छह महीने का कोर्स। मुजफ्फरपुर से एक शिक्षक आकर बेरमा गाँव में स्कूल चला रहे थे। इसमें दस लोगों ने अपना नाम लिखाया था, और कुछ दिनों तक पढ़कर छह छात्रों ने छोड़ भी दिया था। शेष चार लोग अन्त तक पढ़कर अमीन बन गये।

अभी तक तो जगदीश प्रसाद मण्डल जी भैंस के पीछे मन से तो नहीं लगे हुए थे, फिर भी भाई सब के साथ कभी-कभी चराने के लिए जाया करते थे। लेकिन आदमी के कम होने से उनपर भार आ गया। आमदनी के मुख्य साधनों में से एक हिस्सा रहा।

बेरमा से जगदीश प्रसाद मण्डल के फुफेरे भाई- गोनर मण्डल और कारी मण्डल का हरिनाही जाने पर बेरमा परिवार में आदमी कम गया और

परिवार भी घट गया, जिससे काम भी कम हो गया। अभी तक जगदीश प्रसाद मण्डल जी की माँ घर से निकलकर खेत-खलिहान नहीं जाती थी, वह भी जाने लगी थी। गोनर मण्डल और कारी मण्डल को जो जमीन दी गई थी, वे बेचकर ले चले थे, जिससे खेत भी कम हो गया, उपज भी घट गया। लेकिन काबिल, दूरदर्शी एवम् योग्य परिवार रहने के कारण चौथी पीढ़ी में आज भी सभी परिवारों के साथ पहले जैसा सम्बन्ध कायम है। वर्त्तमान में उमेश मण्डल के साथ निर्मली में जो संजय रह रहा है, वह फुफेरा भाई का ही पोता है।

जगदीश प्रसाद मण्डल जब हाई स्कूल में पढ़ रहे थे, तभी उसका दुरागमन हो गया, जबकि विवाह पहले ही हो चुका था। उसके सामने कुछ समस्याएँ आकर खड़ी हो गई। यद्यपि फुफेरा भाई के जाने से कारोबार कम हो चुका था, फिर भी आर्थिक समस्या बढ़ गई थी। परिवार के भीतर अन्दरुनी विवाद भी चल रहा था। विवाद का मूल कारण जगदीश प्रसाद मण्डल की पढ़ाई थी। उन्हें शिक्षा से दूर रखने की चाह हो रही थी, जबकि शिक्षा समझ विकसित करती है जो सफल परिवार के लिए बहुत जरूरी है। ज्येष्ठ भाई कुलकुल मण्डल का क्रिया-कलाप भी बदलने लगा था, मगर खुल्लम-खुल्ला नहीं। घर के कामों को छोड़कर कुलकुल मण्डल नाच-गान के पीछे लगा रहता था। ससुराल में भी नाच-पार्टी चलती थी। इसके बावजूद भी समाज के हित-अपेक्षित द्वारा खरही खड़खड़ाना भी लगा हुआ था। कुछ भी हुआ परन्तु जगदीश प्रसाद मण्डल जीवन-पथ पर आगे बढ़ते ही गये। पौरुष अपना पथ स्वयं गढ़ लेता है।

“कि वो पथ क्या, वो प्रतिकूलता क्या,
जिस पथ पर बिखरे फूल न हो।
मानव की वो धैर्य परीक्षा क्या
जब धारा प्रतिकूल न हो।”

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

जब मैं उनकी सानिध्यता में जाता हूँ और उनसे बाते होने लगती है तो

उनके दिल के टिस को एवम् कसक को महसूस किया करता हूँ। पूछने पर बतलाया- "कमल का फूल कीचड़ में जन्म लेता है, परन्तु उसका तना कीचड़ से सन्ना नहीं होता, फूल तो और साफ और पवित्र होता है, जो धन की देवी लक्ष्मी जी को अर्पित किया जाता है।"

जब 1967 ईस्वी का चुनाव आया। जगदीश प्रसाद मण्डल भी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए थे। इस चुनाव में जिले के सभी बूथों पर धाँधली हुई। धाँधली के साथ-साथ गाँव-गाँव में मार-पीट और केस-मुकदमा भी खूब हुआ। साथ-साथ जेल की आवाजाही भी बढ़ गयी। केस-मुकदमा होने से कोर्ट-कचहरी के कार्य भी बढ़ गये। उस समय बिहार राज्य में मात्र सत्तरह जिले थे। उसमें वृद्धि की सम्भावना बन गई। साथ-साथ अनुमण्डल, ब्लॉक इत्यादि में भी संख्या बढ़ने की सम्भावना बन गई।

इस चुनाव से मधुबनी जिले से (पहले अनुमण्डल) कम्युनिस्ट पार्टी के योद्धा नेता भोगेन्द्र जी (भोगेन्द्र झा) एम.पी. हुए। दो पार्लियामेन्ट सीटों में एक कम्युनिस्ट को और एक सोशलिस्ट पार्टी के शिवचन्द्र झा को मिला। वैसे जिले से जिस तरह लोकसभा में काँग्रेस पार्टी की हार हुई थी, उसी प्रकार विधानसभा चुनाव में भी काँग्रेस चारो खाने चित्त हो गई थी। कम्युनिस्ट पार्टी को चार एम.एल.ए. और एक एम.पी. सीट मिले। राज्य सरकारें तो लगभग बदल गई, परन्तु केन्द्र सरकार नहीं बदली थी। जिस-जिस राज्य में काँग्रेस सरकार टूटी थी, वहाँ-वहाँ विरोधी पार्टी की सरकार बनी। मगर एक रंग की तो नहीं, खिचड़ी सरकार बनी थी। काँग्रेस पार्टी भी टूट गई जिससे जनक्रान्ति दल बिहार में बना था और महामाया बाबू उसका नेतृत्व कर रहे थे जो बिहार के मुख्य मन्त्री बने। आज की तिथि में भ्रष्टाचार या घूसखोरी देश की मूल समस्या बन चुकी है, परन्तु उस समय भी चोरी-छिपे ये सब चल रही थी, सभी विभाग में घूसखोरी थी। महामाया बाबू की सरकार ने पिछले काँग्रेसी मन्त्रियों के विरोध में सुप्रीम कोर्ट के जज के नेतृत्व में अय्यर आयोग नाम से जाँच-आयोग का गठन भी करवाया था।

वैद्यनाथ राम 'अय्यर' सुप्रीम कोर्ट के जज थे। दक्षिण भारत के हैं।

करीब 95-96 वर्ष के हैं। जीवित ही हैं। उन्होंने बिहार सरकार के पूर्व छह मन्त्रियों के विरुद्ध जाँच रिपोर्ट सौंपा, करोड़ो रूपये की लूट साबित हुई।

1966 ईस्वी में बिहार सुखाड़ के चपेट में आया था, परन्तु यह मुद्दा गौण रहा था, अन्यथा 1967 ईस्वी के चुनाव में यह भी मुद्दा बन जाता। लेकिन सरकार बनने के बाद यह बात समझ आ गई। भुखमरी बढ़ गई। सरकार के सामने जबर्दस्त प्रश्न उठकर खड़ा हो गया था। जमाखोरों के विरोध में अभियान चलाने का निर्णय लिया गया, लेकिन बीच में ऐसा नाटक हुआ कि अभियान मजाक बनकर रह गया। नाटक यह हुआ कि दस-बीस ऐसे लोग पकड़ में आये जिनका कारोबार (अन्न-अनाज का कारोबार) घोड़ा-घोड़ी पर हो रहा था, अर्थात् जमाखोरी नहीं, व्यापार का यह दूसरा रूप था। फिर भी कुछ जमाखोर पकड़े गये, जिनके गोदाम में लाखों क्विन्टल अनाज रखे गये थे।

एम. पी. पद का शपथ-ग्रहण करने के बाद जब भोगेन्द्र जी मधुबनी वापस आये तो सकरी में उन्होंने आम सभा की।

जगदीश प्रसाद मण्डल नए सदस्य होने के नाते और पार्टी की सदस्य होने के कारण बेरमा से पन्द्रह-बीस लोग के साथ सभा में भाग लिए। रेलगाड़ी की सुविधा भी थी। उसमें भी पार्टी का लाल झण्डा लेकर दिल्ली तक प्रदर्शन में जाते ही थे। वैसे, भोगेन्द्र जी के भाषण का यह गुण था कि वे पहले बोल देते थे कि जिसे जो प्रश्न पूछना है, वह पूछ सकता है।

उस समय निर्मली से समस्तीपुर एक गाड़ी जाती थी। बड़ी लाइन का कोई पता नहीं। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी का एक मुद्दा यह भी था। कभी तेज तो कभी धीमी गति की गाड़ी। वैसे पूरब से और पश्चिम से आनेवाली गाड़ी का मेल सकरी में ही होता था- क्रोसिंग का खेल। मगर उस दिन कुसंयोगवश ऐसा नहीं हुआ था, मेल काकरघटी में ही पश्चिम से आने वाली ट्रेन का हो जाने से पीछे रह गई, जिस गाड़ी से भोगेन्द्र जी आ रहे थे। इस कारण से सभा का आयोजन कुछ बिलम्ब से हुआ। सकरी स्टेशन से कुछ ही दूर हट कर दक्षिणी भाग में सभा का आयोजन हुआ।

गाड़ी से उत्तर कर झण्डा फहराते हुए जुलूस तैयार कर सभा स्थल पर

पहुँचे। उनके साथ झंझारपुर के इर्द-गिर्द के भी बहुत लोग उनके साथ हो लिए थे। आयोजक थे चीनी मील के श्रमिक-साथी। उस समय छह महीने ही मील चलता था। वर्ष में छह महीने कार्य होने के बाद छह महीने के लिए बिना काम का रहने की समस्या श्रमिकों की बनी रहती थी। इसके साथ किसानों को न तो ईंख की कटनी होती थी और न ही समय पर दाम मिलता था। ये सभी समस्याएँ रहा करती थी। ईंख की एक ही किस्म की खेती होती थी, जो अगहन में तैयार हो जाती थी। लेकिन बड़े इलाके में खेती होने के बाद भी समय पर कटनी नहीं हो पाती थी। मील भी कम। जितना पेर सकता उतना भी न लेता। उसमें भी चालाकी यह रही थी कि शुरू में तैयार तो शुरू में अच्छा उत्पादन होने लगता था- चीनी का उत्पादन। इसके विपरीत जितना पीछे हो जाता था, उतना रस गाढ़ा हो जाता था, जिससे चीनी की मात्रा बढ़ जाती थी।

पश्चिम से गाड़ी आते ही दरभंगा-जाले का विधायक खादिम हुसैन के साथ भोगेन्द्र जी हाथ में चमड़े का बैग लटकाये आगे-आगे और दस-पन्द्रह लोग पीछे-पीछे स्टेशन से सभा-स्थल पर पहुँचे। हाफ शर्ट और धोती पहने हुए थे। पैरों में चमड़े के जूते थे, कि मंच से नारा लगने लगा। आधी से अधिक मंच भरे हुए थे।

जो वक्ता भाषण दे रहा था, उसने अपनी बात समाप्त की। चीनी मील के ट्रेड यूनियन के जो नेता थे उन्होंने अपनी समस्या को विस्तार से रखा। जगदीश प्रसाद मण्डल और उनके साथ आये सभी लोग आगे में नीचे बैठे हुए थे। भोगेन्द्र जी की ओर से भाषण से पहले अन्य, सभाओं की भाँति प्रश्न पूछने का आग्रह किया गया। कुछ प्रश्न आये भी।

ढाई-तीन घन्टों के बाद सभा का विसर्जन हुआ। सभामें भाग लेने वाले चारो ओर के लोग चले गये, मगर ट्रेन से लौटने वाले सभी लोग स्टेशन पर (सकरी स्टेशनपर) आ गये। दोनों गाड़ियों में- निर्मली जाने वाली और जयनगर जानेवाली- में एक-डेढ़ घन्टा का विलम्ब था। स्टेशन पर भोगेन्द्र जी से सर्व प्रथम आमने-सामने मुलाकात अथवा परिचय जगदीश प्रसाद मण्डल जी का हुआ। उन्होंने जगदीश प्रसाद मण्डल के हितकर विचारों को खूब सराहा था।

1967 ईस्वी के आम चुनाव ने परिवर्तन की आँधी ला दी थी। विधानसभा एवम् लोक सभाओं में नहीं, राज्य स्तर एवम् केन्द्र स्तर में ही नहीं बल्कि गाँव-गाँव के जन-गण में भी यह आँधी आई थी और लोगों ने हार-जीत को भी महसूस किया था। व्यावहारिक दौड़ में जो कुछ मगर भाषण के क्रम में तो जनता की सभी समस्याएँ सामने आई हीं। कम्युनिस्ट पार्टी का विस्तार हुआ। 34 सीट अर्थात् 34 विधायक और पाँच-सात एम.पी. कम्युनिस्ट पार्टी से चुने गये थे।

आजादी के बाद पहली बार सत्ता या शासन आम जनता की ओर बढ़ी थी, वैसे अभी तक सरकार का अर्थ आम जन-गण में किरासन तेल और जो कोटा का मुख्य बिन्दु या वस्तुएँ निर्धारित थीं, मात्र उतना ही तक। डीलर सभी के कार्यो की लेखा-जोखा शासन भर चलती थी। अन्य-अन्य समस्या तो भाषण तक ही सिमटकर रह गयी थी। कुछ न कुछ बाढ़ या सुखाड़ आ जाया करते थे, सरकार का कहना था कि उससे बचाव के उपाय में वह रहती थी।

आजादी के पहले का या बाद का छोटा-छोटा नवयुवक भी जवान हो चले थे। जिससे अन्य-अन्य नवीन कार्य भी सरकार के सामने आये। आज का मधुबनी जिला जो उस समय अनुमण्डल था। ग्यारह एम.एल.ए. और दो एम.पी. में बँटा हुआ था- छह-छह एम.एल.ए. पर एक एम.पी.। दरभंगा के जाले विधानसभा क्षेत्र भी मधुबनी लोकसभा क्षेत्र में ही पड़ता था।

वैसे, अभी के मधुबनी जिले के पश्चिमी भाग में जमीन की लड़ाई भी जोर-शोर से चल रही थी, लेकिन मुख्य मुद्दा था पश्चिमी कोसी नहर। मिथिलांचल में कोसी, कमला, बागमती का जो उपद्रव सालों-साल से चलता आ रहा है और क्षति पहुँचाती है, इतनी बड़ी बजट तो कितने सरकार को नहीं होती थी। खैर जो हो...। उन्नीस सौ साठ दशक के प्रश्न, समस्या और लड़ाईयाँ कम्युनिस्ट पार्टी का मुख्य लड़ाई रही थी, जिसकी दशा-स्थिति मनुष्य की एक जिन्दगी के (65-66 वर्ष) उपरान्त भी कैसी है, वह सभी के सामने है। यदि योजनाबद्ध तरीका से कार्य होता तो ये मिथिला नहीं, उस मिथिला के समान परिलक्षित होता, जिस मिथिला में ऋषि-मुनी ईच्छानुसार पानी बरसाते

रहते थे। इतने पैमाने पर पनबिजली का उत्पादन होता, जो घर-घर में पहुँच गई होती। मगर आज क्या देखते हैं? चुनाव होते रहे, एम.एल.ए. और एम.पी. बदलते रहे परन्तु समस्या ने आज ऐसा विकराल रूप ले लिया है जिससे आर्थिक तंगी के कारण दिन-दहाड़े लूट-पाट हो रहा है- प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप में।

यदि जापान, जर्मनी और पड़ोसी देश चीन की जमीन के प्रति उपज की तुलना अपनी मिथिलांचल की भूमि से की जाय तो आश्चर्य ही नहीं, विश्वास भी नहीं होगा कि मिथिला में सिर्फ साढ़े तीन हाथ के मनुष्य ही रहते हैं, जिनको मात्र पेट ही है या कि दो हाथ-पैर है और विलक्षण मातृभूमि भी है। मिथिलांचल की ऐसी भूमि और जलवायु है जो दुनिया में कहीं नहीं है। न तो इतने मुलायम मिट्टी है, न ही ऐसा अच्छा पानी है और न ऐसा सुन्दर मौसम हीं। लेकिन आज क्या देखते हैं? न तो अभी तक नेपाल सरकार से समझौता हुआ है और न ही कोसी के पश्चिमी-पूर्वी नहर का समुचित विकास। एक तो योजना का कार्य पीछे हुआ और उस पर कार्य में ऐसा पेंच-पांच है कि अभी तक एक नहर भी बनना कठिन। बनने पर पानी ऊपर से नीचे आसानी से आता है, लेकिन नीचे से ऊपर आसानी से जा सकता है? नहीं जा सकता। यदि गहराई में नहर खोद दिया जाय तो उसका पानी ऊपर कैसे जाएगा? हाँ, मशीन के माध्यम से जा सकता है, लेकिन 'घर में फुस-फास, सोम दिन विवाह' तात्पर्य जहाँ त्रेता युग के तीन-बित्ता हल और सतयुग के बसहा-बैल से अभी तक खेती हो, वहाँ यह कैसे सम्भव होगा या सही माना जाएगा?

सभा-समाप्ति के बाद सकरी स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर सभी एक जगह आकर बैठ गये। पल्था मार कर बैठने के लिए भोगेन्द्र जी ने भी कहा। गाड़ी पकड़ने के लिए सब का मन चंचल। पल्था मार कर बैठने का अर्थ निश्चिन्तता की ओर संकेत। पहले उन्होंने सबसे नाम-गाँव और पता पूछा। नाम-पता पूछने के बाद कहा- "कम्युनिस्ट पार्टी अपनी पार्टी है। अपनी पार्टी का यह अर्थ नहीं कि यह कोई जाति-मजहब है, मनुष्य-मात्र की पार्टी है। हमलोगों को ऐसे समाज का निर्माण करना है, जहाँ न तो कोई भूखा रहेगा और न नि:वस्त्र।

सबका बाल-बच्चा पढ़ेगा और सबके रोग-व्याधि और आसमानी- आफत का ईलाज होगा, तभी न सभी आगे की ओर मुँह कर, अर्थात् आगे मुँह बढ़ने की कोशिश करेंगे। हमारे यहाँ जो ऋषि-मुनी हुए, उन्होंने क्या किया? उन्हें तो अपने जीवन की कोई चिन्ता नहीं थी। उन्होंने अपनी जिन्दगी ही जप-तप में जला दी। मगर क्या नहीं किया? यदि नहीं किया तो एक कट्ठा जमीन में जीवन-वसर कैसे किया था। मगर अपना धरोहर में यदि ताला लगाकर रखेंगे तो उस धरोहर की महिमा कौन समझेगा? लखन जी माने डॉक्टर लक्ष्मण झा ने मिथिलांचल के लिए अपनी जिन्दगी समर्पित कर दी, मगर क्या किया, यह कौन समझेगा?

दिल्ली जाने से पहले भोगेन्द्र जी कम्युनिस्ट पार्टी के जिला कार्यालय में जगदीश प्रसाद मण्डल जी जैसे सक्रिय कार्यकर्त्ता को बुलाये और आश्वासन दिया- “अब जब आऊँगा तो बेरमा जाऊँगा ही, इस कारण इसपर ध्यान रखेंगे।”

जिस तरह हाट-बाजार में भी और गाँव-घर में भी वस्तुओं का लेन-देन तीन तरहों के लोगों के बीच होता है- एक वस्तुवाला, दूसरा खरीदने वाला, दोनों के बीच लेकिन तीसरा भी बन जाता है, जो है जरूरत। मतलब यह कि जब वस्तु बेचने वाले और खरीदने वाले को उस वस्तु का गर्ज होगा तभी व्यवहार सुलभ होगा। क्योंकि बेचने वाले को अन्य कार्य का गर्ज और खरीदने वाले को वस्तु की जरूरी- गर्ज। यही बीच वाला अर्थात् माध्यम बनने वाला दुनियाँ का कलाकार है, ऐसा कलाकार जो दुनियाँ को अपने साथ नचाता है। सदियों से एक लोग दूसरे के सामने विकट परिस्थिति तैयार करते हैं और उसका कण्ठ भी दबाता रहता है। मगर ऐसा नहीं हुआ। जिस तरह भोगेन्द्र जी के कार्यक्रम की जिज्ञासा बेरमा के लोगों की थी उसी तरह भोगेन्द्र जी और कम्युनिस्ट पार्टी की भी थी। सकरी सभा की बात या भोगेन्द्र जी के आश्वासन की चर्चा बेरमा गाँव में जोर-शोर से होने लगी...। एक ओर अच्छा से अच्छा कार्यक्रम हो, इसके पीछे लोग लग गये तो दूसरी ओर नया क्षेत्र मिलने से भोगेन्द्र जी और पार्टी भी उस कार्यक्रम को अच्छा से अच्छा बनाने के फिराक

में लग गये। वैसे 1967 ईस्वी से पहले भी बेरमा में एक बार कम्युनिस्ट पार्टी बनी थी, परन्तु व्यावहारिक पक्ष कमजोर रहने से टिक नहीं पाई थी। टिकने या ठहरने के लिए तो जगदीश प्रसाद मण्डल जी जैसे जज्बाती सदस्य की जरूरत होती है, जो सक्रिय रूप से काम करता है और सशक्त हस्ताक्षर बनता है।

नवयुवकों के बीच पार्टी बनी, अधिकांश युवक पढ़ा-लिखा। पार्टी का तौर-तरीका भी सभी के बीच स्पष्ट नहीं था। जिस कारण समझ-बुझकर कुछ-कुछ सीखते थे, अकाश से पताल तक की बात उड़-डड़ कर सभी के कानों में आती रहती थी, जिससे कुछ-न-कुछ उत्साह जागता ही रहता था। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य पार्टी की अपेक्षा (पूँजीवादी की अपेक्षा) चरित्र निर्माण यहाँ कैसे होता है? संघर्ष ही चरित्र गढ़ता है।

संसद की बैठक की समाप्ति के तीसरे दिन भोगेन्द्र जी मधुबनी वापस आये। अभी तक भोगेन्द्र जी को लोग इस रूप में नहीं पहचानते थे, अन्य नेता जैसा आयेंगे कि नहीं आयेंगे, यह असमंजस लोगों के बीच बनी हुई थी, क्योंकि कई कार्यक्रमों में समय लेकर नेता नहीं भी आते थे।

संसद-समाप्ति के बाद अगले सुबह में ही भोगेन्द्र जी पटना आ चुके थे। पहली बार बिहार से काँग्रेस विरोधी पार्टी के सांसद बहुमत से दिल्ली पहुँचे थे। बिहार में भी गैर काँग्रेसी सरकार बनी थी। महामाया प्रसाद मुख्यमंत्री और जननायक कर्पूरी ठाकुर उप-मुख्यमंत्री बने थे। महामाया बाबू काँग्रेस पार्टी से ही टूटकर या अलग होकर जनक्रान्ति दल बनाये थे। बिहार सरकार में सबसे अधिक विधायक सोशलिस्ट पार्टी के ही थे, जिस कारण सरकार में भी अधिक भागीदारी मिली थी। पहली बार धनिकलाल मण्डल जीत कर गये थे, लेकिन इसके बाबजूद भी वे विधानसभा अध्यक्ष बने, क्योंकि वे बड़े योग्य, कर्मठ, ईमानदार, संघर्षशील और समाज-चिन्तक थे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कोटा से दो कैबिनेट तथा दो राज्य मंत्री बनाये गये। दरभंगा जिले के कोटा से तेजनारायण जी (श्री तेजनारायण झा) राज्यमंत्री बने। वैसे चारों नेता अपने-अपने क्षेत्रों में कर्मठ ही थे। जिस तरह इन्द्रदीप भाय (श्री इन्द्रदीप सिंह) विद्वान अर्थशास्त्री थे, उसी प्रकार चन्द्रशेखर भाय (श्री चन्द्रशेखर सिंह) भी

क्रान्तिकारी थे। श्री शत्रुघ्न बेसरा आदिवासी के नेता थे, तो तेजनारायण जी किसान के नेता। सरकार डोलती ही रही, कभी दल-बदल से तो कभी रौदी-सुखाड़ की मार से।

किसान-नेता के साथ-साथ भोगेन्द्र जी बिहार के भी नेता थे। इस कारण कार्यों का भार अधिक आ गया था। पटना में राज्य की स्थिति पर विचार-विमर्श करते-करते पहला दिन बीत गया। लेकिन प्रात: काल से ही क्षेत्र-भ्रमण का समय बना चुके थे। रातो-रात मधुबनी आ गये। मधुबनी आते ही सबको यह खबर मिल गई कि 'भोगेन्द्र जी कल बेरमा में आयोजित कार्यक्रम में रहेंगे'।

वैसे, बेरमा-कार्यक्रम का प्रचार हो ही रहा था, पर्चा भी छपवा लिया गया था, दिन में आम सभा करते और रात में कार्य-कर्त्ता की बैठक। खाने-पीने की भी व्यवस्था हो चुकी थी। स्वागत को बेरमा तैयार।

आम सभा के अन्तिम समय पाँच बजे के बाद भोगेन्द्र जी जीप से बेरमा पहुँचे। भोगेन्द्र जी के आने से पहले आम-सभा में मर्माहत। वहाँ उपस्थित लोगों के मन में यह बात बैठ गई थी कि भोगेन्द्र जी अब नहीं आयेंगे, समय बहुत हो चुका है। परन्तु भोगेन्द्र जी को पधारते ही रंग-रूप ऐसा बदला, मानो सूखा पेड़ फिर से हरा हो गया हो। कुछ लोग जो उठ-उठ कर चल दिये थे, रास्ते से लौट गये। साथ-साथ कुछ नये लोग भी आये। जीप से उतरकर भोगेन्द्र जी बोले-"एक गिलास पानी और चाय पिला दीजिए। तबतक मंच पर बैठता हूँ।"

लोग जल्दीबाजी चाहने लगे, यह कि जब भोगेन्द्र जी यहाँ पहुँच चुके हैं तो बिना मतलब ही उनका समय नष्ट क्यों करें। मंच पर भोगेन्द्र जी चुपचाप बैठकर सब कुछ देख रहे थे। पानी पीकर उन्होंने चाय पी।

चाय पीते ही बोलेने का आग्रह किया गया। आग्रह होते ही उन्होंने कहा-

"सभी को पूछ लीजिए कि किसी को कुछ पूछना है?"

लेकिन सभी तो सुनने के लिए ही उत्सुक, इस कारण एक भी प्रश्न नहीं आया था। उठते ही दिल्ली की काँग्रेसी सरकार की कहानी संक्षेप में

उन्होंने कही कि किस तरह अभी पूँजीपति, कारखानादार और सामंत (राजा-महराजा) के बीच विवाद फँसा हुआ है। विवाद की चर्चा करते हुए कहा कि देश का विकास अवरूद्ध हो गया है। लेकिन यह बात कम ही लोग समझ सके, क्योंकि गाँव के लोग सरकार का अर्थ कोटा का गेहूँ और थाना ही मात्र समझते थे, कहीं-कहीं पर एक दो चापाकल भी गाड़े गये थे। उस वक्त चीनी-मटिया तेल का कोटा हुआ ही था। वैसे, गेहूँ भी कोटे के ही हिसाब से मिलता था। लेकन लेने के अभाव में या पैसे के अभाव में नहीं खरीदने से समझ से बाहर था।

भोगेन्द्र जी ने तुरन्त दिल्ली सरकार की चर्चा करते तो तुरन्त बिहार सरकार की चर्चा करने लगते। रौदी-अकाल की स्थिति (भयावहता) और बिहार सरकार के आँत-पेट खोलकर रख देते थे। उन्होंने कोसी नहर की चर्चा विस्तार से की और कहा कि यह योजना मिथिलांचल के लिए क्या है। मिथिलांचल की चर्चा के क्रम में कहा कि सामाजिक शोषण यहाँ एक-दूसरे को आगे बढ़ने से रोकता है, और अन्य बातें विस्तार से कही।

वैसे, भोगेन्द्र जी का भाषण दो घन्टे से चार घन्टे तक होता था, मगर वैसा बेरमा में नहीं हुआ। एक घन्टा होते-होते समय ही समाप्त हो गया। सभा समाप्त होते ही उन्होंने कहा कि वैसे कार्यकर्त्ता की बैठक करने का भी कार्यक्रम है, लेकिन वह सही से नहीं हो सकता। फिर भी आपलोग तैयारी करेंगे, तो तबतक के लिए हूँ, उसी बीच वह भी हो जाएगा। चाय भी उसी बीच आई, वे जलपान नहीं किये। चाय पीते वक्त ही उन्होंने अय्यर-आयोग की चर्चा भी की। यह आयोग कुछ ऐसे काँग्रेसी नेता या मंत्री की जाँच करेगा जिसने सरकार में रहकर गोलमाल किया है।

वैसे, जिस हिसाब से बेरमा में कम्युनिस्ट पार्टी की पहली आम सभा थी, उस हिसाब से बहुत अच्छा रहा था, जिसे भोगेन्द्र जी स्वयं बोले।

कार्यकर्त्ता की बैठक शुरू होते ही जैसे भोगेन्द्र जी का रूप बदल गया, बोले- "कम्युनिस्ट पार्टी राजनैतिक पार्टी है, आपलोगों ने पार्टी का सदस्य बनकर इसे बनाया है, तो आपलोग ही इसे सम्भाल कर आगे बढ़ायेंगे। इसकी

जवाबदेही आप ही लोगों पर। आपलोग अपने आप को क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझकर सामाजिक व्यवस्था में सुधार करें, जबतक सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलेगा, तबतक सर्व कल्याणकारी समाज नहीं बनेगा और यदि ऐसा नहीं हुआ तो कुछ लोग लूटते ही रहेंगे तथा कुछ लोग लुटाते ही रहेंगे। कमायेंगे आप और खायेंगे दूसरा। लेकिन पार्टी तो गाँव से लेकर दुनिया-जहां में फैल चुकी है। इस कारण एक दूसरे से जुड़ कर कैसे रहेंगे, यह तौर-तरीका सीखना होगा। लूटने वालों के पास सभी प्रकार की शक्ति है। इसके मुकाबले के लिए सटीक शक्ति बनानी होगी। अभी मैं भी जल्दबाजी में हूँ, इसलिए ठीक से समझा नहीं पा रहा हूँ। निश्चिन्त होता हूँ तो फिर आऊँगा। अभी कुछ मूल बात कह देता हूँ। आप लोगों ने गाँव में पार्टी बनायी है, गाँव की जो समस्याएँ हैं उसको पकड़िये और सभी सदस्य एक जगह बैठकर उस समस्या पर विचार करें। लोगों को लेकर ही समाज बनता है। एक जुट में रहेंगे तो समस्याओं का समाधान होता रहेगा। वैसे जितना आसान समझते हैं, व्यवस्था को बदलना उतना आसान नहीं है। विरोधियों के आक्रमण के साथ पार्टी में भी मतभेद होगा और साथ-साथ परिवार में भी होगा। बहुत बढ़िया खाने-पीने का प्रबन्ध किये हैं। सब लोग एक जगह बैठकर खायेंगे-पीयेंगे तभी तो छुआ-छूत का जो रोग है, दूर होगा। जबतक नहीं टूटेगा, मन-भेद होती ही रहेगी। नियमित बैठक करते रहें। जबतक पार्टी कार्यालय नहीं बनता है, तबतक टोल-टोल बैठक करें। इस टोल की क्या समस्या है, उस टोल की क्या समस्या है और समाधान कैसे होगा, बैठक का मुख्य विषय क्या होगा। यह तो सामाजिक स्तर की बात हुई। कोई समस्या लेकर ब्लॉक में प्रदर्शन करेंगे तो पार्टी का ब्लॉक में प्रदर्शन होगा। उसमें बेरमा की भी समस्या को मुद्दा बनायेंगे। जिलों में भी ऐसा ही प्रदर्शन होता है। राज्यों की राजधानियों में, दिल्ली में भी, सभी में भाग लेंगे।"

भोगेन्द्र जी जल्दबाजी में थे, नौ बजे प्रस्थान कर गये। उनके जाने के बाद खाना-पीना शुरू हुआ और कार्यक्रम समाप्त हुआ।

गाँव में एक नव नजर, नव ज्योति का जन्म हुआ। जैसे, पहले गाँव के

लोग जो समझते थे, उससे भिन्न समझने-जानने की प्रक्रिया शुरू हुई। सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाने वालों की पहचान और बढ़ने लगी थी।

चार लोगों के बीच रहने और बोलने से बोलने का अभ्यास बन जाता है और साथ-साथ खुद नया विचार, नया सुझाव भी आता है।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी कर्मठ, संघर्षशील और जुझारू सामाजिक कार्यकर्त्ता होने के नाते अथवा पार्टी के सजग सिपाही होने के नाते दिल्ली की रैली तक में भाग लेने लगे। नये-नये लोगों से मुलाकात और परिचय होने लगा। क्षेत्र के आधार पर जहाँ वे जाते थे, नयी-नयी कला-संस्कृति देखने का अवसर भी मिलता था। इसके साथ-साथ जगदीश प्रसाद मण्डल जो पुस्तक-प्रेमी रहे हैं, उन्हें दो आना, चारआना में अच्छी-अच्छी किताब सब भी मिलने लगी। इससे उन्हें नयी-नयी जानकारी होने लगी।

1967 ईस्वी के पश्चात...

1967 ईस्वी के बाद गाँव से लेकर देश भर में दो रसों से सन्ना, दो रंगों से सन्ना दोरस हवा उठी, लेकिन हवा के रूख की सीमा तो भिन्न-भिन्न होती है, कहीं रेतवाली भूमि में अपना रस चटबाती है, तो कहीं समुद्र में ज्वार उठाती है, कहीं पहाड़ से टकड़ाकर या तो बादल की दिशा में उड़ जाती है अथवा पीठ दिखा कर भाग जाती है। कहीं समतल भूमि में वृक्षों को उखाड़ती है, तो कहीं सरोवर की हल्फी, तो कहीं मन्द गति सुहावन हवा भी देती है।

अवसर का लाभ जो लोगों को मिलना चाहिए वह नहीं मिल सका। यदि नहीं मिल पाया तो औद्योगिक क्षेत्रों की अपेक्षा कृषि क्षेत्र कैसे पीछे हो गयी? भले हीं आक्रोश में कहा जाय कि महाराष्ट्र, कर्नाटक औद्योगिक क्षेत्र में आगे बढ़ गये और बिहार पीछे हो गया, मगर महाराष्ट्र और कर्नाटक के उद्योगों को देखते हैं तो यह भी देखना होगा कि वहाँ जमीन पर जीने वालों की स्थिति-दशा क्या है। क्या यह बात झूठ है कि वहाँ के किसान पर बिहार की अपेक्षा

आत्महत्या की नौबत आती है। इसी तरह देश के अन्य राज्यों की अपनी-अपनी समस्या है। क्या यह उचित नहीं है कि बिहार स्वतंत्र भारत का अंग है, अस्तु एकरूपता होनी चाहिए। आज बिहार नहीं अन्य-अन्य राज्य, ऐसा है, जहाँ बिहार से भी अधिक समस्या है जिसका समाधान जरूरी है।

मिथिलांचल भी इस दूसरी हवा से अलग नहीं रह सका। पुराने दरभंगा जिले के अनुमण्डल मधुबनी अथवा वर्त्तमान में मधुबनी जिला के जमीन में भरपूर एकरूपता आई। लेकिन खेतों का महत्त्व तभी रहेगा जब उसमें पर्याप्त पानी हो, उन्नत बीज हो, अच्छे खाद हो और साथ-साथ कृषि यंत्र लेकर कुशल किसान भी तैयार हो।

दस वर्ष पूर्व से ही कोसी नहर के पीछे प्रगतिशील किसान और बुद्धिजीवी लोग खड़े रहें लेकिन सुननेवाला नहीं। यदि सुनी भी गई तो कार्य में इस तरह का व्यवधान आया कि पच्चास वर्षों में भी योजना पूरी नहीं हो सकी। नदी-नाले से ऐसा खिलवाड़ हुआ कि मिथिलांचल की आधी से अधिक जमीन मिट्टी से बालू बन गई है। वैसे नदी अनेक है, जिनमें कुछ ऐसी भी नदियाँ हैं जो हजारों वर्षों से अपनी दिशा नहीं बदलीं, मगर कोसी-कमला-बलान के लिए भगता-लीला, पूजा-पाठ, गीत-गायन इतना हुआ, इतना स्वागत होता रहा है जो आधी से अधिक जमीनों को शक्तिहीन, कमजोर, उर्वरारहित बना चुकी है। बालू कैसे उपजाउ मिट्टी बनेगा? छोटी समस्या नहीं है। राजनीति की दशा ऐसी है कि लोग मुँहपुरखी या प्रधान बनने के जाल में फँसा रहता है। मिथिलांचल की कोई भी समस्या देश की समस्या है। समस्या पर राजनीति, मगर दूर...। रात के आठ बजे केवल सितार पर सुना जाता है- 'परम प्रिय पावन मिथिला देश...।'

जिस तरह बेरमा गाँव देश का अंग है, उसी तरह तो देश भी बेरमा का अंग है। इसी कारण देश की दोरस हवा बेरमा में भी बही थी। साईकिल की ओभरवाइलिंग की भाँति गाँव का वाइलिंग शुरू हुआ। एक साथ ही रंग-बिरंगी हवा बेरमा गाँव में प्रवेश कर गई। अड्डाबाजी होने लगी। कुछ चिनगारी गाँव में

उठी तो कुछ बाहर से फैलती-लपकती आने लगी।

अभीतक गाँव में जाति-सम्प्रदाय की हवा नहीं आई थी। बीस से भी अधिक जातिवाला गाँव बेरमा। त्योहार में एकरसता नहीं। एकरसता कैसे हो? आधी से आधिक स्त्रियाँ भादव रवि का व्रत करती ही हैं। पवनी का विधान भी भिन्न-भिन्न। कोई दोनों शाम उपवास करती थी तो कोई एक शाम। कोई नमक परहेज करती तो कोई अन्न छोड़कर केवल फल का ही सेवन करती थी। इसी प्रकार घड़ी पवनी हैं। एक ओर वर्ष के दो-तीन महीना- सावन, आश्विन और चैत में होती है तो दूसरी ओर बुधवारी घड़ी, सोमवारी घड़ी, शुक्रवारी घड़ी आदि भी होती है।

मगर कबीरपंथ के प्रवचन करनेवाले कबीर पंथी लोग और आ-आ कर माया-जाल की निंदा करते और सेवक सब को चेतावनी देते थे। सेवक भी कई प्रकार के होते हैं। उसमें भी बेरमा में गड़बड़। एक ओर एक सौ की संख्या में ब्राह्मण बस्ती-टोल, जिसमें एक भी वैष्णव नहीं। वैसे, समाज के पंथनिरपेक्ष के ख्याल से अच्छा ही है। दूसरी ओर दलितों का भी टोल है। बीच की जो जातियाँ है, वे धार्मिक पंथ (सम्प्रदाय) से जुड़े हुए हैं। जातियों के बीच वैष्णव-सांकट को लेकर विवाद चलता आ रहा है, उसपर भी जातियों के बीच भी विवाद।

कबीरपंथी के बीच एक समझौता हुआ। समझौता यह कि श्राद्ध-कर्म के पश्चात् सत्य नारायण पूजा और इसके बाद कबीर पंथी भण्डारा भी हो। और ऐसा होने लगा। इसके बाबजूद भी मिलिभगत का खेल जारी था। तभी कबीरपंथ मजबूत हुआ। इसके अधिक समर्थक हुए, आज भी हैं हीं। इसबीच एक घटना धानुक (मण्डल) जाति में फँस गई। द्वालक के कबीरपंथी सुबे दास का प्रभाव मण्डल के बीच और मल्लाहों के बीच और साथ-साथ बेरमा गाँव में अधिक था। रमौत पंथी की मान्यता गाँव में अधिक था। ननौर में बुद्दी दास रमौत पंथी का महंथ बन गया। इधर सुबे दास बेरमा में आकर बुद्दी दास के एक दियाद को कण्ठी बाँधकर अपना सेवक बना लिया। मतलब यह कि जो पहले रमौत था, उसे अब कबीर पंथी बना लिया गया।

इस तरह सेवक या चेला की लूट पर ननौर वाले बुद्दी दास ने फरमान

जारी किया- “जैसे उसके कान में अर्थात् घुरण दास के कान में मंत्र दिया और उसने दूसरा मंत्र ले लिया, उसी प्रकार उसके कान में करूआ तेल खूब गरम करके डालूँगा और उसके साथ-साथ मंत्र भी निकाल दूँगा।”

डंका पर चोट पड़ गई। द्वालक वाला सुबेदास ने जवाब दिया कि उसका (बुद्दी दास के) पंथ ही कमजोर है। उससे प्राणी-जीव के थोड़े ही गति-मुक्ति मिलेगी। पहले दान तो कर लें या यदि नहीं करता है तो सेवक के कान में तेल डालना नहीं चलेगा...।

कसम-कस होने लगा। वाक युद्ध या कह सकते हैं, शीत युद्ध, दो देशों के बीच का। सब के द्वार-दरवाजे पर इसी घटना की चर्चा। समाज के कुछ लोग इसलिए खुश थे कि चलो यह धानुक-धानुक के बीच की लड़ाई है। दूसरी ओर जाति-पाति पर भी चोट पर गई थी।

कम्युनिस्ट पार्टी की रैली जैसा सड़क पर प्रदर्शन के समान समाज में कबीरपंथ को मानने वाले सबके बीच खाने-पीने में एकरूपता आ गई थी। कबीरपंथ में भण्डारा महत्त्वपूर्ण आधार है। जैसे जगन्नाथ में अँटका प्रसाद का महत्त्व होता है, उसी प्रकार (उसी सदृश्य) कबीर पंथ में एक-दूसरे के बीच प्रसाद का प्रचलन है।

कबीर पंथ और रमौत सम्प्रदाय को लेकर तथा दोनों के बीच तना-तनी में गाँव बँटने लगा। तीन-चार टुकड़ो में गाँव बँट गया।

कबीर पंथ से कमजोर रमौत सम्प्रदाय था। एक गाँव, दो गाँव ही नहीं बल्कि कई गाँवों के कबीर पंथी मैदान में उतरने लगे। बेरमा गाँव के बगल में ही जगदर गाँव है। वैसे क्षेत्र में जगदर-बेरमा के नाम से जाना जाता है। जगदर जैसे छोटे गाँव में भूमिहार ब्राह्मण और राजपूत बहुसंख्यक है। वैसे, बरही, यादव, तेली, दुसाध, धुनिया, सोनार, मल्लाह भी हैं, मगर अल्पसंख्यक।

जगदर में नथुनी सिंह की प्रमुखता थी, सरदारी थी। और अस्सी प्रतिशत भूमिहार उसके लठैत थे। जिससे पचकोसी में लड़ाई-झगड़ा का व्यापार चलता था। जगदर के नथुनी सिंह भी कबीर पंथी। वह लोहिया पट्टी के राजपूत के

महात्मा का सेवक। वह संख्या में कम, परन्तु शक्तिशाली था। सम्प्रदाय के रूप में जगदर कई टुकडों में बँट चुका था। राजपूत कबीर पंथी की ओर तो भूमिहार राधा-कृष्ण सम्प्रदाय की ओर, यादव, बरही, दुसाध कबीर पंथ के तरफ तो धुनिया इस्लाम की ओर। मल्लाह तो स्वभावत: थाल-पानी में रहने वाला है, वैष्णव में क्यों जाएगा?

लोहियापट्टी का महात्मा कबीर पंथी का झंझट-झगड़ा सुनकर जगदर में आसन लगा दिया और अन्य सेवकों को भी आने को कह दिया। महाभारत की लड़ाई जैसा बेरमा की धरती कुरुक्षेत्र बननेवाली थी :-

"सन-सन-सन-सन यौद्धा करते
वीरों की आई वसन्त।
युद्ध का नगाड़ा घोष होने को था
धरती करती धम-धम-धम-धम।।"

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

शास्त्रार्थ का समय निर्धारित हो गया। गाँव मेला सदृश्य बन गया। क्षेत्र के लोगों की नजर बेरमा गाँव पर, सब टक-टकी लगाकर इन्तजार में। युद्ध का शंख कब बजेगा?

मगर नहीं तो शास्त्रार्थ हुआ, न ही महाभारत। लेकिन उचित हुआ और सही हुआ। ननौरवासी बुद्दी दास पीछे हट गया और मार-पीट-दंगा से गाँवों को बचा लिया।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी का परिवार तो और सतरंगी..। एक तरफ देवस्थान से जुड़ा समाज के सभी पवनी में तो दूसरे तरफ इनके पिताजी कबीरपंथी विचारधारा में रमण करने वाला या सुबेदास का सेवक। तीसरी ओर जगदीश प्रसाद मण्डल जी की माता, समस्तीपुर जिला के साहोपटनिया वाला की सेविका। मायके से ही दीक्षा ले ली थी, उसका तीसरा ही सम्प्रदाय, क्योंकि गुरु वैष्णव को भी और सांकट को भी शिष्य बनाते थे। वे भी आया-जाया

करते थे, ब्राह्मण थे और अपने हाथों से भोजन पकाते थे।

कबीर पंथी सम्प्रदाय व रमौत सम्प्रदाय अथवा वैष्णव और सांकट रहने के कारण बेरमा में दुर्गा-पूजा में बलिप्रदान को लेकर मामला फँसा था- मुख्य कारण यही था।

बेरमा गाँव में दुर्गा-पूजा हुई, जिससे कई रंग बिखर कर सामने आ गये। बेरमा के आकाश में सतरंगी इन्द्रधनुष-सा छा गया, तात्पर्य जाति और महंथनामा पर आधारित पूजा पर प्रहार हुआ। सभी जातियों की कुँवारी कन्याओं के द्वारा मन्दिर में दीप जलाये गये, सबकी पूजा बनी। दूसरे गाँवों में भी इसका प्रचार हुआ। बलि प्रदान को लेकर कुछ लोग रूठ गये, जो राजनीति का एक अलग ही रंग ले लिया। सत्ता से जुड़ने का कारण मधेपुर ब्लॉक में बेरमा का ही प्रमुख होता था। वैसे मधेपुर अट्ठाईस पंचायतों का ब्लॉक था, कई जातियों के कई मुखिया, मुसलमान को छोड़कर। मुखिया कोई भी हो मगर मुखिया का मतलब काँग्रेसी। ऑफिस-कार्यालय का कार्य भी एकतरफा, जिससे राजनीति का रंग ऊपर चढ़ा और चन्दा का धन्धा रोजगार का रूप ले लिया। ब्लॉक का ऑफिस दुर्गा-स्थान से जुड़ गया, तात्पर्य मेला के अवसर पर योजना से सम्बन्धित आवेदन वहाँ लिया जाने लगा और सभी प्रकार का बँटवारा या वितरण भी वहाँ होने लगा। वैसे दुर्गा-पूजा से प्रथम लाभ ग्रामीणों को ही हुआ। कुछ लोगों को छोड़कर अधिकांश परिवार को वृद्धा-पेंशन भी मिलने लगा।

दुर्गा-पूजा का जातियों पर भी असर पड़ा। ब्राह्मण बँट गये, क्योंकि दोनों स्थानों के लिए जो उनका समर्थन रहा था। एक तरफ पण्डित व्याकरणाचार्य उदित नारायण झा पण्डित बने तो दूसरी ओर वैदिक व्याकरणाचार्य पण्डित कामेश्वर झा।

ग्राम पंचायत के मुखिया चुनाव में उलट-फेर हुआ था। ब्राह्मण ही मुखिया बना था और हारनेवाला भी ब्राह्मण ही था। बचनू मिश्र, मुखिया तो नहीं थे, परन्तु वे अपने समर्थक को मुखिया बनवाये थे, क्योंकि वे अंचल के लोकप्रिय ओर ईमानदार नेता की भूमिका निभाया करते थे। लेकिन उसके समर्थक मुखिया के हार जाने से राजनीति में वे पीछे हो गये।

1967 ईस्वी के चुनाव में काँग्रेसी को जबर्दस्त धक्का लगा था। मधेपुर प्रखण्ड के नेता जानकी बाबू- श्री जानकी नन्दन सिंह- थे, जिन्होंने काँग्रेसी विधायक बनकर प्रतिनिधित्व किया था, वे काँग्रेस से अलग होकर महामाया बाबू के जनक्रान्ति दल में आ चुके थे। इसका लाभ सोशलिस्ट पार्टी को मिला और वासुदेव बाबू- श्री वासुदेव प्रसाद महतो, एम.एल.ए. बने थे।

बेरमा में जाति-व्यवस्था...

बेरमा में ब्राह्मण पाँच खण्डों में विभाजित है। वैसे चुनाव के नाम पर सबका एक ही मत अर्थात् सब एकमत में रहते थे, परन्तु सामाजिक व्यवहार में एक-दूसरे से दूरी बनाकर रहते थे। 1962 ईस्वी में जो पहले कम्युनिस्ट पार्टी बनी थी, उसमें ब्राह्मण लोग आपस में टूट गये थे। पाँचों खण्डों की सामाजिकता अलग-अलग थी। कथा-कुटमैती-विवाह आदि और खान-पान में भी दूरी बनी थी। बरई, कोइर और केवट में एकरूपता थी। एकरूपता इस कारण से कि खान-पान और त्योहार एक समान या एक रूप का होता था। धानुक दो खण्डों में विभाजित थे और अभी भी हैं। दोनों के बीच की दूरी का मुख्य कारण है कि दो रंगों का धन्धा- बहुत पहले धानुक लोगों की नौकरी कर रहे थे और साथ-साथ किसान बनकर खेती भी करके जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसी प्रकार मल्लाह भी विभाजित है। मुसहर परिवारों की संख्या बहुत अधिक है, जिस कारण किसी भोज-कार्य में सबको सभी नहीं खिला पाते हैं और अलग रहा करते हैं।

बेरमा में दुर्गा स्थान और अन्य...

बेरमा गाँव में दुर्गा-स्थान बनने से पूर्व भी अनेक छोटे-बड़े, सुन्दर और प्रसिद्ध स्थान थे और किसी न किसी रूप में आज भी है। सरिसब पाही के बलदेव बाबू ने बेटा के उपलेखना में बड़की पोखर के उत्तर के महाड़ पर एक

शिवालय बनाया। आज भले ही वह कोई खास नहीं है परन्तु पहले बहुत सुन्दर मन्दिर था। वैसे 1988 ईस्वी के भूकम्प में गिर गया परन्तु वह स्थान और भी चमकदार और दर्शनीय हो गया। उसी स्थान के मैदान में दुर्गा-पूजा का मेला और मुसलमानों का दाहा-मुहर्रम मेला भी लगता है। मेले में दुकानदार भी हिन्दू और देखनेवाले लोग भी हिन्दू हीं।

दूसरा स्थान, राधा-कृष्ण, राम-जानकी, हनुमान-महादेव सभी का सम्मिलित स्थान है। जो स्थान बहुत पुराना है जिसे बौधू दास ने बनाया है।

बौधू दास शुद्ध वैरागी थे। परिवार के नहीं रहते भी स्थान को स्थान जैसा रखते थे। गाँव में प्रतिदिन कम-से-कम एक बार स्वयं घूमते थे और सबसे मिलते तथा कुशल-समाचार पूछते। लोग भी अनुग्रह करते रहते थे- “बाबा, आज का भोजन हमारी ओर से रहेगा।”

अकेला ही घूमा करते। मगर ठाकुरवारी बनाया था, जो बिना मूर्त्ति का था। लोगों के दु:ख-दर्द को समझा करते थे। भखरौली-सुखेत नील कोठी के साहेब के अन्याय को वे बर्दास्त नहीं करते थे। उन्होंने समूचे बेरमा के लोगों को कहा कि उसे अब भगाना है।

डेढ़ हाथ का बेंत लेकर बौधू दास जो घूमते थे, वही बेंत लेकर आगे हुए। सिर्फ आगे ही नहीं बढ़े, बल्कि करके भी दिखला दिये।

उसी स्थान पर महावीर दास आया। गरीब परिवार का महावीर दास, कबीर पंथी विचारधारा के लोग। वह भी उसी स्थान पर आ जमा। बौधू दास की उम्र भी बहुत हो चुकी थी, इसी कारण से उन्हें रख लिया। वैष्णव थे हीं। मगर बौधू दास का प्रभाव रहा ही था। साधारण परिवार से आया हुआ महावीर दास का विचार बड़ा ही उदार था। भूमिहार रहते हुए भी सभी परिवार में कबीर पंथी समझकर भात-रोटी सब खाते थे। उसे वैदगिरी का ज्ञान हो गया, जो आगे बढ़ता गया। आमदनी देखकर बहुत उम्र के बाद विवाह भी करवाया गया और वे कर भी लिए। तब तक स्थान में पाँच बीघा जमीन भी हो चुकी थी, जो समाज के द्वारा दान स्वरूप दिया गया था।

स्वभाव से महावीर दास उदार स्वभाव के लोग, वे अफीम खाते थे। क्षेत्र में बहुत नाम किए। ठाकुरवारी में जो आते, जो संगीतकार या भजन करने वाले बड़े-छोटे आते, सभी का मान-सम्मान कर खुशी से विदा किया करते। जैसे, दरवारी दास हो या छठू दास हो, हिताई दास हो या लखन दास हो, जो ढोलकिया रूप में बम्बई में प्रसिद्ध थे, सभी का मान-सम्मान उस स्थान पर होता था।

गाँव का तीसरा स्थान है- ब्रह्मस्थान, जो आज भी एक बीघा से अधिक जमीन में है। उसी जगह पक्का मकान में आँगनबाड़ी केन्द्र, धर्मराज स्थान सभी हैं। जबतक पण्डित उपेन्द्र मिश्र थे, जो वेद, व्याकरण, साहित्य और ज्योतिष के आचार्य थे, वे इसी ब्रह्म स्थान पर प्रत्येक वर्ष कार्तिक महीने में पन्द्रह दिन भागवत कथा किया करते थे। वे इतने संयमी प्रवचन कर्त्ता थे जो एक शब्द भी अधिक नहीं बोलते, जिस कारण उनके सम्बन्ध में उपहास करते हुए अन्य पण्डित उन्हें कम ही आँकते थे। अपने आँगन से ही चौकी उठाकर लाते और उपयोगी बैठक बनाते थे। दो-तीन दिनों तक प्रचार होता और साथ-साथ सुनने वालों की संख्या जैसे-जैसे बढ़ती जाती वैसे-वैसे भागवत-कथा को आगे बढ़ाते थे।

महावीर स्थान, मतलब महावीर जी का स्थान भी था जो पोखर के महाड़ पर अधसुखे कटहल के पेड़ के पास ध्वजा गाड़ कर स्थापित किया गया और वहाँ पूजा होने लगी। कुछ ही दिनों में एक अद्भूत घटना घटी, वह अधसूखे कटहल का पेड़ पानी पी कर लहलहा उठा और डाली और पत्तियों में फलने की शक्ति आ गई। डेढ़ सौ से लेकर ढाई सौ की संख्या में फल लग गये, भले हीं बीच का कोह तीन-चौथाई में नहीं होता था, कमरी ही होता था। क्या यह अद्भूत लीला नहीं थी? यही कटहल का पेड़ स्थान को प्रभावित और ज्योतिर्मय किया। यह समाचार क्षेत्र में भी फैल गया। धीरे-धीरे वहाँ अष्टयाम कीर्तन, रामनवमी, चैती पूजा आदि भी होने लगी। तीन मन से पाँच मन के बीच गेहूँ-चावल के प्रसाद बनते थे जो खर्च होते थे, जो एक-एक मुट्ठी करके बाँटा जाता

था। लकड़ी का मण्डप रहा करता था, जो विसर्जन के बाद नगर कीर्तन में शामिल किया जाता था। नगर कीर्तन का मतलब चार लोग मण्डप उठाकर आगे-आगे चलते थे, उसके पीछे कीर्त्तन मण्डली और समूचे समाज साथ-साथ समूचे गाँव में घूमा करते थे, जिसको जो बनता था, श्रद्धा से चढ़ाया करते थे, जिससे साज-बाज-बाजा आदि खरीदा जाता था।

इसी प्रकार मुसहर समाज भी आश्विन महीने में पूजा करते थे और आज भी करते हैं, मृदंग-झाल लेकर दस लोग गाँव में घूमते थे, चन्दा माँगते थे और पूजा करते थे।

उसी प्रकार मुसलमान समाज भी मुहर्रम मनाते हैं और समूचे गाँव घूमते हैं। ऐसा भाईचारा बेरमा में चला आ रहा है।

प्रत्येक साल दो स्थानों में दुर्गा-पूजा, महावीर स्थान में दर्जनों अष्टयाम, नवाह, तीन दिनों का कबीरपंथ-सन्त सम्मेलन, दर्जनों साहित्यिक संगोष्ठी, द्वार-द्वार पर कीर्त्तन-भजन इत्यादि होते रहते हैं। इतना ही नहीं, तीन-तीन महंथ, तीन-तीन सम्प्रदाय के आधे दर्जन से ऊपर कीर्त्तन मण्डली, जो आज रोजगार बना गया है, सभी चलते हैं। आखिर में बेरमा गौरवशाली मिथिला की शान है न..!

“कीट-कृट-कीट मृदंग बाजे
झन-झन-झन-झन झंझर झनके
हरमुनियो सात स्वर में
सरगम ताल पे छम-छम छमके।।”

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

कीर्त्तन मण्डली में प्रेम, गीत-संगीत में स्नेह का राग और साज-बाज-बाजा या वाद्य यंत्र में मिलन का ताल बसता है जो बेरमा में था- भाईचारा की धारा।

1969 ईस्वी में दुर्गा-मन्दिर में भगवती की स्थापना हुई जिससे गाँव के आयात-निर्यात का सम्बन्ध दूसरे-दूसरे गाँव से जुड़ गया। एक लेन-देन या

व्यापार का रास्ता बन गया। समाज समुद्र से भी बड़ा होता है, समाज में क्या-क्या होता है, यह कहना कठिन है, मगर कुछ देखने में जो आता है वह है स्त्रियों के माध्यम से मैयके और ससुराल के बीच रूपैये-पैसे, गहना-जेबर आदि की बन्धकी। किस गाँव का गहना किस गाँव गया, कहना कठिन है। दूसरे गाँवों के बीच महाजनी और अन्य-अन्य गाँव से महाजनी चलती रहती है। जमीन्दारी का रोआब तो खानदानी बना है, गर नहीं तो अंग्रेजों के जाने के बाद भी साहेबी का बीज कैसे छिट गया? मैनजन, महाजन, जमीन्दार के साथ-साथ जाति-सम्प्रदायिक के कई सूत्र लग चुके हैं।

बेरमावासी को ऋण देने में आगे आये जाति का महाजन। सिर्फ एक पीछा पड़ गया दाता, मगर व्यापार छोटा। व्यापारियों का शासन भी जमीन्दारों से अलग होता था। खैर जो हो। श्राद्ध-कर्म और विवाह-कर्म को रोकने की पुरोहितों ने घोषणा कर दी। गाँव के लोगों के बीच समस्या खड़ी हो गई। अब क्या होगा? कबीर पंथी महात्माओं को एक रास्ता मिल गया। घौड़दौड़ शुरू किया। अब समाज में धधकने वाली आग ठंढी हुई। कबीर पंथी विचारधारा भी विचित्र है जो गति-मुक्ति का विचार तो समाज को देती है परन्तु आज-कल की बात नहीं कह पाती है। आज हम क्या हैं? कौन हैं? विचारणीय प्रश्न है। कबीर की पंक्तियाँ है-

"साई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय...।"

मगर कौन कहाँ से देगा, घिसा हुआ दर्पण जैसा पारभासी बन जाता है। इसी प्रकार माया के बुनियाद से ऊपर उठकर विचार रखते हैं, जिससे झिन्नी चादर के समान रोशनी दिखलाई देती है। अध्यात्म ऐसी पद्धति है जो मनुष्य को मनुष्य बनाने की कला सिखलाती है। सिर्फ कला ही नहीं, ऐसी बुद्धि भी देती है जिसे 'सुपर मैन' कहते हैं। किस की न यह अभिलाषा होगी कि 'सुपर मैन' बनू? मगर ऐसा क्यों नहीं हो पाता है? जंगल में लाखों पेड़ एक साथ रहकर जीवन-यापन करते हुए हवा अथवा आँधी के झोकों को भी सहते हैं, मगर...।

इक्कीसवीं शताब्दी की माँग है कि स्वतंत्र मनुष्य बनकर स्वतंत्र

विचरण कर सके। लेकिन जिस जगह बाट-घाट तथा मार्ग आदि ही असुरक्षित हो, वहाँ दिल्ली दूर नहीं तो क्या पास है! हाँ, इसको जाने दें, जो खाया वह पछताया और जो नहीं खाया, वह भी पछताता है।

1960 ईस्वी से जगदीश प्रसाद मण्डल कृषि कार्य से कुछ-कुछ जुड़ गये थे। मिरचाई, बैंगन, गोबी, आलू... इत्यादि की खेती शुरू की। धान, मरूआ, रब्बी-राई की खेती मजदूर के हाथों ही होने लगी। इनके ज्येष्ठ भाई को खेती से कम ही मतलब रहता था। उसमें भी अमानत कर लिया था। अमीन थे, वे। जमीन की खिस्सा-कहानी और लीला ऐसी जो महीनों में भी अन्त नहीं लेती थी- अमानत की शिक्षा से-

“कुछ कड़ी आगे, कुछ कड़ी पीछे
निश्चित बिन्दु का चिह्न नहीं!
जरीब-गुणिया जब गुनगुनाता
रकवा-कनमा का लेख नहीं है!!”

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

लेकिन अपनी जिन्दगी के लिए तो लोग कुछ सोचता ही है। वे नाच-गान की ओर मुड़ गये। परन्तु गरीबों की कला को उभारना बाल-बच्चे का खेल नहीं है। खैर जो हो।

भोगेन्द्र जी के सम्पर्क में आने के बाद जगदीश प्रसाद मण्डल जी की जिज्ञासा खेती के प्रति और बढ़ गयी। बढ़ने का कारण यह कि जर्मनी, जापान की खेती की बात नेता जी ने उनके मन में बैठा दिया था। हिसाब जोड़कर या समीकरण मिलाकर देखते थे तो दस कट्ठा खेत एक परिवार के लिए या 5 लोगों के लिए अधिक हीं समझ में आता था। जिनमें साइबेरिया के किसान ऐसे किसान होते हैं जो साल के छह महीने, आठ महीने का ढँका हुआ बर्फ हटते ही जल्दबाजी में ऐसी खेती कर लेते हैं जिससे पैदावार अच्छा हो जाता है। आज भले ही मिथिलांचल के आधी से अधिक भागों की मिट्टी बलुआही मिट्टी बन चुकी हो अर्थात् मिट्टी के ऊपर बालू भर गया है। समस्या इतना गम्भीर है कि

जिस तरह बालू तले से ऊपर आकर भूमि को बर्बाद कर दिया है, उसी तरह उसको समावेश करने से किसानों के हाथों में खेत आती है। बिहार की मूल पूँजी खेत हैं। अत: जितनी खेती समृद्ध होगी, उतना राज्य भी समृद्ध होगा।

एक तो अपने हाथ की पूँजी खेत, दूसरा जब राजनीति से जगदीश प्रसाद मण्डल जुड़ गये तो कार्य भी बढ़ गया। खेती की ओर बढ़िया से बढ़ने की कोशिश करने लगे। पूसा मेला से खेती-वारी की किताब खरीद-खरीद लाने लगे, जिससे कृषि-कला में चमत्कार हुआ, ज्ञानवर्द्धन हुआ। साथ-साथ किसानों का जो कार्यक्रम होता था, उसमें भी मण्डल जी जाते थे। इतना ही नहीं, राजनीति से जुड़ने और सामाजिक धरातल पर नेतृत्व करने की क्षमता हो जाने से जगदीश प्रसाद मण्डल अपनी समस्या या लोगों की समस्याओं को लेकर कोर्ट-कचहरी भी जाया करते थे।

मधेपुर प्रखण्ड में जुबेर साहब पी.ओ. थे, जो बहुत शरीफ व्यक्ति थे। वे अपनापन का भाव रखते थे, जगदीश प्रसाद मण्डल उनके सम्पर्क में आये। जुबेर साहब जो कृषि-स्नातक थे। स्कूल-कॉलेज जैसा घन्टों खेती की बात लोगों को समझाते रहते थे। उनसे सम्पर्क होने से जहाँ-जहाँ उनका कार्यक्रम होता था, इन्हें जानकारी जरूर दे दी जाती थी और ये जाते भी थे। कृषि महाविद्यालय पुसा-ढोली में भी साल में एक बार बड़ा या छोटा कार्यक्रम होता ही रहता था, जिससे वे लाभ उठाते थे।

बेरमा गाँव में 1960 ईस्वी से पूर्व न तो एक बोरिंग था और न हीं एक दमकल। सर्व प्रथम स्व. सत्यदेव झा, जो पढ़ा-लिखा तो नहीं था परन्तु एवरेडी बैट्री कम्पनी, कलकत्ता में नौकरी करते थे। वहाँ उन्हें खेती की जानकारी भी मिल गई थी।

सत्यदेव झा सेवा निवृत्त होकर गाँव आ गये। उन्होंने सोचा कि यदि पाँच बीघा जमीन खरीद लेता हूँ और उसमें बोरिंग-सिस्टम कर लेता हूँ तो परिवार का परवरिश हो जायेगा। वैसा किया भी। इस तरह वह गाँव का पहला बोरिंग है।

खेती की जानकारी हो जाने से किसान पानी का महत्त्व जानने लगता है। राजनीति पार्टी गाँव में बन ही चुकी थी। सरसठ की रौदी के पश्चात बोरिंग-दमकल की योजना भी बनी, मगर सतमसुआ बच्चा के समान।

बेरमा गाँव में बी.डी.सी. की बैठक हुई, जिसमें प्रखण्ड के सभी पदाधिकारीगण आये हुए थे। तोहफा के रूप में डी.एम. (जिलाधिकारी) ने तिहाई सब्सिडी के रूप में बोरिंग-दमकल की चर्चा की तथा साथ-साथ किसानों की दशा-दिशा पर भी चर्चा की। चार श्रेणियों में किसानों की चर्चा करते हुए सभी के लाभों की भी चर्चा की।

जगदीश प्रसाद मण्डल ने एक चतुर और कुशल किसान का परिचय देते हुए चार अन्य किसानों से मिलकर यानी पाँच किसान, सभी ने मिलकर विचार किया कि अवसर का उपयोग करना चाहिए। वैसे, पाँचों लोगों ने बोरिंग गड़ाने का विचार किया, परन्तु दो लोगों ने नहीं गड़ाया। बोरिंग गड़ाने के पश्चात नये-नये धान, गेहूँ का बीज भी लाने लगे। सीता धान, जो पतला भी होता है और खाने में भी अच्छा लगता है, सवा क्विंटल कट्ठा की दर से उपजने लगा। सिर्फ धान-गेहूँ ही नहीं, आलू-गोबी, टमाटर इत्यादि की खेती भी जोर-शोर से होने लगी। जो गाँव कर्ज के बोझ तले दबा हुआ था, वह अपने पैरों पर खड़ा होने लगा। गाँव से जमीन्दार चले गये थे, केवल एक बचा हुआ था, जिसके पास एक सौ दस बीघा जमीन थी, बाद में जिसपर जबर्दस्त लड़ाई हुई।

बी.डी.सी. की बैठक में डी.एम साहब ने सुदखोर महाजन की चर्चा विस्तार से किया था। साथ में यह भी कहा कि “जो महाजन दोगुना से अधिक ब्याज लेगा, उस पर कानून कारवाई होगी।”

कर्जदार निश्चिन्त हो गये, आगे देखा जाएगा, रहने पर ही दूँगा। नहीं रहने पर कहाँ से दूँगा। मगर महाजनों का आक्रमण हुआ। पकड़ा-पकड़ी-खिंचा-तानी शुरू हुई।

खेती के साथ-साथ जगदीश प्रसाद मण्डल जैसे समाज-सेवी का ध्यान गाँव के अन्य-अन्य कार्यों की ओर गया। बेरमा में जितने बाँध-सड़क हैं, उन्हें

नक्शा के अनुसार बनवाया गया, जिससे गाँव की रूप-रेखा बदल गई। ये सभी जन-सहयोग से हुए। बाद में सरकारी योजना से मिट्ठी करण और खरंजाकरण होता रहा। वर्त्तमान में बेरमा गाँव के रूप-रेखा और स्वरूप ऐसा हो गया है कि कोई ऐसा परिवार नहीं है जिसके घर के आगे से चार पहिया वाहन न गुजरता हो, उसी प्रकार प्रति दो परिवारों पर पानी पीने का साधन भी बन चुका है। वैसा ही प्रति आठ बीघा पर बोरिंग (प्राइवेट) है। वैसे पश्चिमी कोसी नहर की दो शाखाएँ भी उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम बन रही हैं। इसके साथ स्टेट बोरिंग भी गड़ाया हुआ है। मगर चालू नहीं हुआ है। ठीक इसी प्रकार यातायात-आवागमन की सुविधा भी है। एक ओर रेलवे स्टेशन तीन किलोमीटर पर है तो दूसरी ओर एन.एच-57 दो किलोमीटर पर है। वसन्त ऋतु आते ही जिस प्रकार मेघ में सटे जैसे वृक्षों से लेकर मिट्टी में स्थिर और धरती पर फैला हुआ पेड़-पौधों में नये पल्लव, नई पत्तियाँ, नई कलियों के साथ नये फूल और मंजर आते हैं, ठीक उसी प्रकार..। प्रसंगवश वसन्त गीत की कुछ पक्तियाँ-

"पेड़ों में नव पल्लव लगते
आमों में लगते मंजर।
पीले फूल सरसो के हँसते
विटप-विटप खिलते सुमन।
जब आता वसन्त, ऋतुराज वसन्त।।"

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

उसी प्रकार बेरमा-समाज की फुलवारी में नये पल्लव, नये मंजर, सरसों के नये पीले फूलों जैसे और खिले नये सुमनों की भाँति अनेक नयी समस्याओं का जन्म हुआ और लोगों के सामने खड़ी होने लगी।

जगदीश प्रसाद मण्डल के नेतृत्व में कुछ लोगों ने विचार किया कि समाज के उत्थान में जाति-कट्टरता बाधक है। वैसे, जो जाति के बीच कथा-कुटुमैती या रक्त का सम्बन्ध, बेटी-रोटी का सम्बन्ध होता है, वह दो समाजों के बीच का प्रश्न बन जाता है, परन्तु समाज के बीच जाति का छुआ-छूत बहुत

गहरा गड्ढा बना देता है- हम ब्राह्मण हैं, हम यादव हैं, राजपूत हैं, धानुक हैं इत्यादि, ऐसा कहना छुआ-छूत नहीं तो और क्या है? इस कारण महीना-महीना में एक बार बैठक करेंगे, जो टोल-टोल में घूम-घूम कर करेंगे, यह विचार सबका हुआ। बैठक में किसी तरह की व्यवस्था का प्रश्न नहीं हो, मगर टोलवालों के विचार से, यदि वे सभी खाने-पीने की व्यवस्था करेंगे तो सभी खायेंगे, अन्यथा कोई दबाव नहीं, ऐसा विचार सबका हुआ। वर्त्तमान में भी खाते ही हैं। सभी जातियों की बारात में भी और अन्य भोज-कार्य में खाते ही हैं। हाँ, यह बात जरूर है कि सभी उलटा-सीधा चल ही रहा है, लेकिन सभी जातियों का सहयोग रहने से कम पड़ जाता है। यह बहुत अच्छा कदम हुआ।

क्षेत्र में जैसे आग पसरने लगी हो। वैसे, झंझारपुर प्रखण्ड में कमला से पश्चिम नागेन्द्र जी (डॉ. नागेन्द्र कुमार झा) और बेरमा से पूरब फुलपरास प्रखण्ड में कामेसर जी (श्री कामेश्वर राम) ने भी क्रान्ति का सूत्रपात किया। जोर-शोर से पार्टी का प्रभाव बढ़ा। उस बीच नागेन्द्र जी ने पार्टी कार्यालय, पार्टी स्कूल चलाया। पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में जगदीश प्रसाद मण्डल ने सभी जगहों में भाग लिया, क्योंकि तीनों प्रखण्ड नजदीक पड़ते थे। केन्द्रीय नेताओं के साथ रहने का मौका भी मिला। उनलोगों की भी ईच्छा हुई कि बेरमा में ऐसा ही हो। और ऐसा हुआ भी।

टोल-टोल में बैठक होती थी और उस टोल की मुख्य समस्या ही बैठक का मुख्य मुद्दा होता था जिससे गाँव का अध्ययन अधिकांश लोगों को होने लगा था। चौक-चौराहे पर सिनेमा-सर्कस की बात न होकर गाँव की समस्या की चर्चा होती थी, लेकिन चलनी जैसा रोगग्रस्त समाज का ईलाज...।

वैसे अन्य गाँवों से भिन्न बेरमा गाँव की बनावट भी है जिसके मुख्य कारणों में एक यह भी है कि आज तक गाँव-घर को काटने वाली (गाँव कट्टा) नदी का प्रकोप नहीं हुआ। कहने को तो बहुत पहले से एक सुपैन नदी है, जिसका प्राचीन नाम सुपर्णा नदी है, यह नदी अजगर साँप की भाँति एक ही जगह पड़ी रहती है। उसमें भी तीन महीना नदी बहती है फिर शेष महीने मुर्दघटी

और चारागाह बना रहता है।

बेरमा गाँव में बासभूमि अधिक रहने से ऊँची जमीन पर्याप्त है। मध्यम वर्गीय किसानों की संख्या अधिक रहने से जमीन का छोटा सीमांकन है। मगर सिंचाई की व्यवस्था नहीं रहने के कारण बाड़ी-झाड़ियों में मरूआ और गम्हरी की खेती ही होती थी। सब्जी-तरकारी की खेती के लिए ऊँची जमीन की आवश्यकता होती है। मध्यम स्तरीय जमीन (चौर को छोड़कर) दो बार, दो फसल फसल-चक्र द्वारा उपजती है। कुछ बोरिंग हो चुके हैं, चापाकल भी लोग गड़ा ही चुके हैं। गाँव में सब्जी की खेती बढ़ चली। कई कमजोर परिवार उठकर खड़े हो गये। महाजनी भी बन्द हो चुकी थी, जिससे कुछ समस्याएँ उठ गई थीं।

वह आग, जो भीतर ही भीतर फैलती है, उसे भुमहुर आग कही जाती है। भुमहुर की तरह बेरमा गाँव की राजनीति हो गई। सभी स्थानों में सब लोग, परन्तु मन सबका दूसरी ओर सिर्फ डिहवार स्थान, ब्रह्म स्थान ही सार्वजनिक। जैसे अन्य-अन्य गाँव में कहीं सड़क सीमा होती है या स्कूल, वैसे बेरमा में नहीं हुआ, पानी में ही सीमा गाड़ दी गई। एकहरे परिवार विभाजित हो गये। दुर्गा-पूजा आदि को लेकर ब्राह्मण बँट गये। उसी बीच कपिलेश्वर राउत के बाबा की मृत्यु हो गई। पुरोहितों ने ललकार भरा। लड़ाई फँस गई। ऐसा हुआ कि एक तरफ पुरोहितों ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो दूसरी तरफ कपिलेश्वर राउत अड़कर खड़े हो गये। मृत्यु के दिन तो विवाद नहीं हुआ परन्तु पाँच-सात दिनों के बीच अर्थात् मृत्यु से श्राद्ध-कर्म के बीच, क्षेत्र में सनसनी फैल गई। क्योंकि वाक्-युद्ध का वातावरण बन चुका था। लोगों में नवचेतना भी आई। कुछ समय तक समस्या पर से ध्यान हट गया था। कोई कपड़ा खरीदने गया, कोई बाँस काटकर चचरी बनाने लगा तो कोई अछिया-गड्ढ़ा खोदने गया। बाजारू कारखाने जैसा कार्य चलने लगा। मगर जैसे एक कम्पनी का ईंजन का पार्ट दूसरी कम्पनी के ईंजन में लगाने से खड़खड़ाहट होता रहता है, वैसे ही गाँव में शुरू होने लगा, चचरी बनाने से पहले बाँस काटते समय रोक-टोक होने लगा। इसका कारण भिन्न-भिन्न जाति का भिन्न-भिन्न विधि-विधान। मगर संयोग ऐसा हुआ कि सभी टोलों के लोग वहाँ पहुँच गये। जैसे कोई गजेरी धुआँ

की गन्ध लगते ही प्रेमी की ओर आँख उठा-उठाकर देखने लगता है, वैसे ही जो जिस कार्य का प्रेमी था, उसे देखने लगा अर्थात् सभी अपने-अपने कार्य में जुट गये। मगर इस बात पर सब सहमत थे कि जिस जाति का कार्य है, उसका महत्त्व अधिक हो।

घरवाला (कपिलेश्वर राउत, जागेश्वर राउत और लखन राउत, तीनों भाई) कुबेर का खजाना खोले हुए। जिस कार्य के लिए जिसकी जरूरत होती थी पूछने का कोई प्रश्न नहीं। अपना ही कलम-बाग है, बाँस-बारी है। तीन बाँस चचरी के लिए काटी गई।

चचरी बनाते समय, कैसा बल्ला होना चाहिए, इसके लिए भी टोका-टोकी हुई, लेकिन पार्टी के भीतर ऐसे-ऐसे नेता थे, जिनमें घरहटिया भी था। और उसके ही अनुसार चचरी बनी।

फिर लकड़ी काटते समय झंझट हुआ। एक शीशम का पेड़, बिना शाल-शारील का था, जिससे कार्य चल सकता था, परन्तु हुआ ऐसा कि बिना सोचे-समझे अपने मन से, दो लोगों ने फलने वाला आम के पेड़ को काटकर गिरा दिया। मगर किया ही क्या जा सकता है? सूखा जलावन की भी तो जरूरी है, वह भी शीशम काटा गया। तीन-चार दिनों तक डोम लकड़ी उठाते ही रह गये। खैर जो हो.. लेकिन सैकड़ों लोग एक साथ श्मशान में रहें। फैली हुई आग की चिनगारी किस ओर किसे पकड़ लेगी, इसका ज्ञान किसी को नहीं रहा। एक आदमी श्मशान से आया। उसे दूसरे गाँव जाना था, उसने बाल-ढाढ़ी कटाया और चल दिया। जबकि दाढ़ी-केश तीसरे दिन काटा जाता है, वैसे ही सीमा पार करने का मुद्दा भी उठा। स्थिति ऐसी कि समूचे गाँव में रंग-बिरंग की चिनगारी लग गई हो, सबका एकमत नहीं, समान विचार नहीं, किसी का मुँह किसी ओर तो किसी की पूँछ किसी ओर, एक समान दिशा में नहीं, परन्तु ललकार के मैदान तो ललकार ही जोर पकड़ता है। इस कारण कोई भी अपना तर्क को वितर्क-कुतर्क मानने के लिए तैयार नहीं, मगर जैसे कलकत्ता की सड़क पर गाड़ी पर गाड़ी लगी रहती है, वैसे ही गप्प-सप्प या विचार-विमर्श के क्रम में इतनी समस्याएँ निकल आती थीं जो उलझा कर रख देती थीं, किसी घटना की

बात किसी दूसरी घटना में घुस जाती थीं, जैसे दो देशों की लड़ाई में सीमा के लोगों की नीन्द उड़ जाती है, वैसे ही गाँव के लोगों के बीच हो गई। पहले दिन तो किसी को कुछ पता नहीं चला, परन्तु दूसरे दिन यह पता चला कि कुछ लोग अपना-अपना कुल्हाड़ी लेकर वापस आ गये, क्योंकि सामाजिक विधान है कि तीन दिनों तक सबको छुतका लग जाता है। ऐसा नहीं कि सिर्फ परिवार के सदस्यों को ही छुतका लगता है, सदस्यों के साथ चीज-वस्तुओं को भी छुतका लग जाता है।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने जब उन लोगों से वापस लाने की बात पूछी तो उनलोगों ने बताया कि झंझारपुर के लकड़ी व्यापारी की कुल्हाड़ी है; आज सामाजिक कार्य के लिए ले आया था, यदि कुल्हाड़ी पहुँचने में देर हो जाएगी, तो उसका कार्य कैसे चलेगा, बन्द हो जाएगा। तभी एक आदमी बोल उठा कि दूसरे गाँव की कुल्हाड़ी है न, गाँव की कुल्हाड़ी को न छुतका लगता है या कि दूसरे गाँव के औजारों को भी लगता है? मगर कुल्हाड़ी वाला विषय उतना जोर नहीं पकड़ा, जितना केशवाला पकड़ा।

तरह-तरह की बात गाँव में चलने लगी। तेरहा श्राद्ध में दियादवाद सहित नह-केश दिन केश कटायेंगे, जिससे घरवालों का मतलब ही नहीं। मगर समाज में एक जाति के साथ अन्य जाति या एक टोल के साथ अन्य टोल के लोग भी रहते हैं, इस कारण वैचारिक टकराव टोल-टोल, घर-घर होने लगा। विचित्र स्थिति बन गई। पंचायत की व्यवस्था भी हुई। कोई बोल रहा था कि जब मुर्दा जलाने के बाद पोखर में नहाया, आँगन आकर लोह-पत्थर छुआ, अपना घर आकर मिरचाई खाकर और नहा कर कपड़ा बदल लिया, तब छुतका कितना बड़ा है जो तभी भी लगा ही रहा?

तो कोई बोलता था कि केश-कट्टा दियाद होता है कि अन्य कोई? तो कोई बोल रहा था कि कल ही दस रूपया देकर केश बनाया था, कैसे कटा लूँगा?

उस दिन गाँव में बहस जारी रहा। अगले दिन सुबह में कुछ लोग केश

कटा लिये। बिना पंचायत का ही पंचायती हो गई, जिसको केश कटाने की ईच्छा हो केश कटाओ, नहीं मन भावे तो नहीं कटाओ, क्योंकि केश में क्या लगा रहता है। तीसरा दिन छौरझप्पी हुई। अभी तक समाज में कोई निर्णय नहीं हुआ था कि क्या किया जाय, मगर परिस्थिति का सामना जरूर किया जाय, वैसा तो हो, यह सब के मन में था। जिस समय जो समस्या उठेगी, उसी समय उसका समाधान किया जाय।

जिस दिन छौरझप्पी हुई, उस दिन कपिलेश्वर राउत ने अपने आदमी को महापात्र के यहाँ भेजा। बेरमा में महापात्र नहीं है, कछुबी के महापात्र पूजा कराते हैं। जो उसे नहीं कहना चाहिए, वह भी महापात्र ने निर्णय सुना दिया कि वह नहीं जाएगा।

कछुबी से वापस आकर उस आदमी ने कहा। छौरझप्पी का समय होता जा रहा था। क्या किया जाय? अन्त में बिदेसर ठाकुर ने कहा कि छौरझप्पी की सभी बात मैं जानता हूँ। मैं झँपवा दूँगा। यही हुआ भी।

श्राद्ध-कर्म में पुरोहित (ब्राह्मण) का महत्त्व उतना नहीं होता है जितना महापात्र का। निर्णय कुछ नहीं हुआ, हुआ इतना ही कि महापात्र की तरह पुरोहित से भी जानकारी ले ली जाय। और वही हुआ।

दूसरे दिन जब पुरोहित से पूछा गया तो उसने भी 'नहीं जाऊँगा' कहा। सभी ने विचार लिया था।

दिन के अपराह्न में सभी ने एक बैठक की। सर्वसम्मति से यह निर्णय हुआ कि पुरोहित-पात्र को छोड़ दिया जाय, श्राद्ध-कर्म में दो कार्य होते हैं- क्रिया-कर्म और भोज, जो खर्च क्रिया-कर्म में होता है, उसे भोज में ही लगा दिया जाय। वैसे बरई लोग गाँव में नहीं हैं, गिना-चुना हैं और सभी सम्बन्धितों में...।

उपर्युक्त निर्णय लेते ही जैसे शंख फूँकते ही महाभारत शुरू हुआ, उसी तरह गाँव में शंख फूँका गया। गाँव के चारो भाग गली-गली में यह समाचार फैल गया। अन्य-अन्य गाँव में भी तरह-तरह के प्रश्न उठने लगे। कहीं यह भी

प्रश्न उठा कि यदि क्रिया-कर्म नहीं होगा तो भोज नहीं खायेंगे। कहीं यह भी उठा कि कोई अपने ही पिता-पितामह को करता है, उससे क्या पंच (भोज खानेवाले) के मुँह थोड़े ही छुआ जायेगा?

सम्बन्धित कुटुम्ब लोग कपिलेश्वर राउत के यहाँ जिज्ञासा करने आने लगे और कहा करते थे कि समाजिकता टूटने से सम्बन्ध भी टूट सकता है। समाज बनकर नहीं कुटुम्ब बनकर तो खायेंगे।

गाँव में भी जातियों के बीच विवाद हुआ। मृत्यु के दसवाँ दिन, जिस दिन नख-केश-कट्टी होता, भोर में ही बैठक हुई। बैठक इसलिए हुई कि अभी तक भोज-भात खाजा-मोतीचूड़ पर अँटका हुआ था। लोगों के जीवन-स्तर इतना निम्न कि खाजा-मोतीचूड़ लड्डू तक ही सिर्फ पहुँचा था, इस कारण खान-पान में और जोर लगाया जाय। इसलिए रसगुल्ला-लालमोहन के साथ पर्याप्त दही की व्यवस्था होनी चाहिए। भोज-भात की यह स्थिति अभी तक कुछ-कुछ है हीं, मगर पहले कुछ जातियाँ भोज के लिए बदनाम थी। एक हंडी चाय बनाई गई, जिसको जितना मन भाया, सब लोगों ने चाय पी। पान भी बाँटे गये। वैसे, पान वर्जित है, फिर भी।

जाति का उलझाव छूटते ही ग्यारह गाँवों की जातियाँ सहमत हुई कि भोज खायेंगे। वातावरण बना कि कोई अपने ही माता-पिता की क्रिया-कर्म करेगा कि दूसरे का। क्यों बिना मतलब का मुँह फुल्ला-फुल्ली...।

सम्हार किया हुआ कार्य को देखकर सबका मन भी हर्षित। उस पर से चाय की भी निरन्तरता। इतना ही नहीं, रसगुल्ला-लालमोहन आगे में ही था। सभी को लगा कि गाँव से लेकर अन्य दूसरे गाँवों तक बराबर-बराबर का हिस्सा है...।

विचार-विमर्श चल ही रहा था कि अचानक तीनों बहनों ने (कपिलेश्वर राउत की बेटियाँ) आकर प्रश्न खडा किया कि 'नख-केश का भोज हमलोग करेंगी, प्रश्न जटिल हो गया। अच्छा कहकर तीनों बहनों को विदा किया, परन्तु जहाँ बडा भोज का आयोजन हो रहा था, वहाँ छोटा को तो रोकना ही तो

पड़ेगा। नख-केश भोज में किसको खाने के लिए दिया जाता है, उसे दिया जाता है जो दाह-संस्कार में भाग लेता है या काठी-लकड़ी देने जाता है। सभी वहनें क्या भोज करेगीं? भात का भोज जो परम्परा बना हुआ है। तब क्यों एक हीं कार्य के लिए दो रीति? ठीक नहीं होगा। विचारते-विचारते अन्त में नख-केश के भोज का ही उठाव हो गया। तीनों बहनों को कहा गया कि बड़ा भोज हो ही रहा है, तुमलोगों की ईच्छा हो तो इसी में जो देना हो शामिल कर दो। इससे घरवालों को और आसान हो जायगा। तीनों बहनों को मनाने पर वे सभी मान गये।

दूसरा प्रश्न उठा कि यदि पुरोहित-महापात्र नहीं आयेंगे तो उसका क्या करेंगे? कोई अपनी जाति का पुरोहित खोजने लगा तो कोई कुछ। कुछ लोगों का यह विचार हुआ कि यदि वे (पुरोहित-पात्र) नहीं आयेंगे तो उन्हें शत-प्रतिशत छोड़ दिया जाय। कुछ लोगों का यह भी विचार हुआ कि गाँव में राम, सदाय, पासवान आदि के पास अपना सभी कुछ पुरोहित-महापात्र भी हैं तो हमलोग भी क्यों नहीं बना लें। तब क्या होगा?

अन्त में यह निर्णय हुआ- राम अवतार राउत को पूजाने का भार दिया गया और बिदेसर ठाकुर को उसका सहयोगी बना दिया गया।

फिर निर्णय हुआ कि केला के पत्ते पर पूजा हो दक्षिणा में दोनों लोगों को एक-एक जोड़ धोती दी जाय। वही हुआ भी। श्राद्ध के दिन अर्थात् ग्यारहवाँ दिन ही भोज करने का विचार हुआ।

भोज शानदार हुआ। काफी यश मिला, मगर जातियों के बीच जो प्रतिक्रिया हुई, उसे...।

गाँव से लेकर अन्य गाँवों के बीच बैठकें होती रहीं। अन्त में नवानी गाँव के रतीश बाबू का निर्णय हुआ कि ‘जाति के आगे पाति नहीं लगती है’।

कपिलेश्वर राउत के यहाँ की घटना गाँव से बाहर भी आग की चिनगारी जैसे फैलती रही। इस घटना ने छोटी-बड़ी कई घटनाओं का जन्म दिया जिनमें दो महत्त्वपूर्ण है- राम अवतार राउत और रामावतार राउत...।

बेरमा का राम अवतार राउत उसी समय से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का वफादार कार्यकर्त्ता था, जब वह मैट्रिक पास युवक था। भा.क.पार्टी में एक अवधि तक अर्थात् तीन साल तक के लिए जिला परिषद भी रहे थे। वे तीन भाई थे- सीताराम राउत, राम अवतार राउत और राम प्रसाद राउत। इनमें दो भाईयों का विवाह अर्थात् सीता राम राउत और राम अवतार राउत का विवाह मैटरस में हुआ था। मधेपुर प्रखण्ड मधुबनी जिले का चर्चित प्रखण्ड है जिसके अन्तर्गत मैटरस गाँव है। उस समय यह विधानसभा क्षेत्र भी था- अट्ठाईस पंचायतों का विधानसभा क्षेत्र। कोसी और कमला के बीच अवस्थित- पूरब में कोसी और पश्चिम में कमला दोनों के प्रकोप से पीड़ित प्रखण्ड, जो राजनीतिक अड्डा था। देश की आजादी की लड़ाई में मधेपुर प्रखण्ड का किसी भी प्रखण्ड से कम योगदान नहीं रहा था। जय प्रकाश बाबू, सूरज बाबू और मिथिला विभूति आदरणीय लखन जी (डॉ. लक्ष्मण झा) सभी लोकप्रिय नेताओं का यहाँ आना-जाना लगा रहता था। मधेपुर प्रखण्ड के उत्तरी छोर पर बेरमा पंचायत है जो झंझारपुर और फुलपरास प्रखण्डों की सीमाओं से सटा है, वैसे ही पूर्वी छोर पर मैटरस पंचायत अवस्थित है।

मैटरस पंचायत में रामावतार राउत का परिवार है। रामावतार राउत धनी और दबंग थे साथ-साथ सामन्ती रंगों से रंजित कठोर स्वभाव के लोग थे। कोसी के पश्चिमी बाँध के भीतर मैटरस पंचायत है। गाँव से होकर नदी भी बहती है। कुछ भी हो मगर मैटरस में बरई जाति में रामावतार राउत का बोलवाला था क्योंकि धनी लोग ही वहाँ के मुखिया-प्रमुख हुआ करते थे। वहाँ काँग्रेस पार्टी अपना पैर पसारने लगी थी। फिर भी जातियों के बीच विभाजन था, कुछ इधर तो कुछ उधर- 'अपनी डफली अपना राग' में मस्त इसके वावजूद लेन-देन, खाना-पीना, सहयोग आदि एक-दूसरे के बीच चलते रहते थे।

जैसा मैटरस सघन आवादीवाला गाँव है वैसा ही बेरमा गाँव भी है, मगर मैटरस जैसा एक परिवार का वर्चस्व या सामन्ती गन्ध बेरमा में नहीं रहा है। कम आँत-पेट वाले साधारण लोगों का बेरमा में बहुलता..। मैटरस और बेरमा में दूरी बढ़ने का दूसरा कारण- मैटरस में काँगेस पार्टी तो बेरमा में कम्युनिस्ट

पार्टी की गतिविधियाँ। जमीन के मालिक या जमीन्दारों के साथ लड़ाई चलती ही रहती थी। चाहे वह बलदेव बाबू (बलदेव झा, सरिसवपाही) हो या चाहे लक्ष्मीकान्त, रामाकान्त साहु, झंझारपुर हो...। राजनीतिक, सामाजिक और जातियता का रंग ऐसा पकड़ा कि मैटरस का मुखिया रामावतार राउत ने बेरमा के कम्युनिस्ट नेता राम अवतार राउत पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण करने का मकशद जो हो, परन्तु वे राम अवतार राउत और उसके ज्येष्ठ भाई सीताराम राउत के विवाह को पसन्द नहीं करते थे, जो विवाह मैटरस में ही हुआ था। वे दोनों लड़कियों को बेरमा से मैटरस वापस लाना चाहते थे। इस आक्रमण से दोनों भाई भयभीत और लाचार हो गये...।

राम अवतार राउत के श्वसुर ने बेरमा में अपनी बात कह दी थी कि आप लोगों का गाँव है जो मन करे वह करें, मैं जा रहा हूँ। बाद में वे बाबा जी बन गये। सीताराम राउत का श्वसुर तो साधारण और सीधा-साधा लोग। जातियता का रंग (बरई जाति) ऐसा कि खाना-पीना बन्द। कौन किसकी सहायता करेगा?

करीब बारह बजे दिन में मुखिया रामावतार राउत बेरमा पहुँचे। लखनौर प्रखण्ड का प्रमुख, बेरमा निवासी विन्ध्यनाथ ठाकुर पहले से ही वहाँ तैनात थे। बरई टोल से जाति के लोग ही सबसे आगे। बेरमा के रामअवतार राउत के घर के चारों ओर मर्द-औरतों की भीड़ लग गई।

राम अवतार राउत के पिता- सुबध राउत अपनी पत्नी के साथ तीनों बेटों के बीच दरवाजे पर आकर मरने-मीटने के लिए तैयार थे। स्थिति बेकाबू...। महाभारत-युद्ध-सा वातावरण...।

“गदा करते ठन-ठन-ठन
करते तलवारें सन्न-सन्न-सन
तीर थे चलते सर-सर-सर
चलते भाले भी खच्च-खच्च-खच।।”

-रामेश्वर प्रसाद मण्डल

दोनों जेठानी और देवरानी डर से काँप ही नहीं रही थी अपितु रसोई घर के खूटे के पास बैठकर रो रही थीं। जेठानी, यानी सीता राम राउत की पत्नी और देवरानी का मतलब राम अवतार राउत की पत्नी, दोनों बेरमा से मैटरस नहीं जाना चाहती थीं, परन्तु मार-पीट की इस घड़ी में क्या बोलती? दोनों से कहा गया- "अपना-अपना गहना-जेबर जो हो ले लो।" मगर दोनों दुल्हिनियाँ कुछ नहीं बोलीं। दोनों की बाहें पकड़कर जबर्दस्ती सीमा पार करवा दिया, अर्थात मैटरस भेजवा दिया।

राम अवतार राउत को दूसरे मामले में भी फँसाया गया। उसे चार बीघा जमीन थी। उसमें जमीन्दार के द्वारा पेंच फँसाने के कारण, जमीन के अस्सी प्रतिशत पर मुकदमा चलने लगा था। कोर्ट-मुकादमा का सभी खर्च और भार दूसरे लोगों ने ले लिया था, परन्तु जमीन का सबूत और दखल भी तो होता है। दखल- वाले को इतना लाभ तो जरूर होता है कि जमीन उपजाने का मौका तो उसे मिलता है। जमीन के सबूत का मामला अदालत में उठा, लेकिन समर्थन में समाज के मजबूत पक्ष रहने से दखल राम अवतार राउत का ही रहा। बाद में कोर्ट से सबूत भी बना लिया।

करीब दो-डेढ़ वर्षों के बाद, लाठी-फट्ठा चलने के बाद मैटरस के रामावतार राउत ने भी समझौता कर ली। समझौता का कारण था, राम अवतार राउत (बेरमा) के पिता द्वारा अड़कर और डटकर दी गयी चुनौती थी। चुनौती यह कि रामावतार राउत (मैटरस) अपनी बेटी का विवाह करके पहले देखे तो...।

समझौता के आधार पर दोनों लड़कियाँ या दुल्हिनियाँ मैटरस से बेरमा वापस चली आईं। मगर दोनों मानसिक रोग से ग्रस्त, दोनों पर उस परिस्थिति का असर। इस स्थिति में सीता राम राउत की पत्नी केवल एक सन्तान देकर तो राम अवतार राउत की पत्नी दो सन्तानें देकर मर गईं। दोनों भाईयों ने फिर विवाह कर लिया, जिससे वंश बढ़ रहा है।

जगदीश प्रसाद मण्डल बिदेसर ठाकुर के साथ...

बिदेसर ठाकुर का योगदान कपिलेश्वर राउत की घटना में अच्छा रहा। मजदूर-बोनहार परिवार के रहते भी बिदेसर ठाकुर को बात पकड़ने का ढंग और दूसरे को समझाने-बुझाने का ढंग अलग ही था। संयुक्त परिवार में रहता था। संयुक्त परिवार टूटने का कारण गरीबी भी होती है। इसके अतिरिक्त मुख्य अभिभावक की भूमिका तथा बड़ी संख्या। मगर समाज में ऐसा परिवार भी होता है- "यह एक सौ घरों का टोल उसी के वंश का है।"

बिदेसर ठाकुर अपनी पत्नी और बच्चों के साथ कुछ-कुछ खेती और जजमानी-वृत्ति के आधार पर जीवन-यापन करते थे। उनका तीन पीढ़ियों से पुरुष-प्रधान परिवार चला आ रहा था। उन्हें एक बेटा और चार बेटियाँ थीं। जमीन के नाम से आठ कट्ठा खेत, जिसमें तीन कट्ठा धनहर, डेढ़-दो कट्ठा डीह-आवास के लिए (बड़की पोखर-महाड़) और शेष में बाग-बगीचा। दस कट्ठा जमीन बटिया भी करते थे। जजमानी जीविका का मुख्य आधार था। प्रति सदस्य या माथ 12 सेर कच्ची, करीब सात किलो। उन्होंने समय देखकर चारो बेटियों की शादी भी कर दी।

बिदेसर ठाकुर के साथ बहुत बड़ा अन्याय और जुल्म किया गया। अधिकांश परिवार जिन्दगी जीने के लिए तरह-तरह के काम-धन्धा करते हैं। बिदेसर ठाकुर की पत्नी ने भी भैंस की एक पाड़ी खरीद ली और पाल-पोस कर भैंसी बना ली थी। मगर एक रोज थाने के दरोगा, सिपाही और चौकीदार के साथ, नथुनी सिंह लठैत के साथ और विन्ध्यनाथ ठाकुर अपने दल-फौज के साथ बिदेसर ठाकुर के यहाँ पहुँचे। उसका घर रास्ते के बगल में था। मर्द, औरत ताक-झाँक करने लगे। तभी तीनों के बीच काना-फूसी हुई और उसकी भैंस खोल ली गई। आपस में विचार कर सभी ने नथुनी सिंह को भैंस दे दी। उसने भैंस को घर ले आया।

बिदेसर ठाकुर और परिवार के लोग गाँव में घूम-घूम कर लोगों को इस घटना से अवगत कराया और सहायता माँगी, परन्तु रोने-विलखने के सिवा दूसरा उपाय ही क्या? बिदेसर ठाकुर युवकों के बीच गया, दस-बारह आदमियों के बीच जब रोया तो लोगों ने सहायता करने का आश्वासन दे दिया और पक्ष ले लिया, परन्तु लड़ाई करने का एक अलग उत्साह भी तो होता है। जब कोई समस्या एक पंचायत से दूसरे पंचायत में जाती है तो वह समस्या दोनों पंचायतों की बन जाती है। भैस और मनुष्य में फर्क भी तो है। भैंस तो खरीदकर ढेर लगाया जा सकता है किन्तु हजारों भैंसों से एक मनुष्य नहीं खरीदा जा सकता। तो एक भैंस के कारण क्यों मनुष्य की जिन्दगी खतरे में दी जाय? क्यों रक्त का खेल खेला जाय?

तत्काल वातावरण शान्त हुआ। मगर जिस तरह हल्दी की जड़ में विष भी फलता है, क्योंकि हल्दी कहती है- "मैं विषकट्टा हूँ।" बिदेसर ठाकुर कैसे चूप बैठता। उसने कुछ दिनों के बाद लोगों को बैठाया और कहा- "भैंस खोलनेवालों में सबसे अधिक मेरे ही जजमान थे। मैं किसी का केश-दाढ़ी अब नहीं काटूँगा।" यह बात अथवा बिदेसर ठाकुर का ऐसा संकल्प हवा बनकर आकाश में उड़ गया। यद्यपि बिदेसर ठाकुर का केश-दाढ़ी काटना या जजमानी वृत्ति ही जीविका का मुख्य आधार था, फिर भी उसे अपने प्रति जुल्म को देखकर ऐसा संकल्प लेना पड़ा था।

क्षेत्रों की स्थिति भी भिन्न-भिन्न तरह की होती है। लड़ाईयाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं। जमीन की लड़ाई में नागेन्द्र जी (डॉ. नागेन्द्र झा, पैटघाट) को थाना में लटकाकर एक सौ लाठियों से देह तोड़ दिया गया था, कामेश्वर राम (फुलपरास) पच्चीस-तीस लोगों के साथ जेल में बन्द थे, क्योंकि सभी पर हत्या का आरोप था। उसी तरह राम प्रसाद सहनी (पचही) को भी ट्रक में उलटा बाँध कर घसीटा गया।

बेरमा गाँव में कोई मुकदमा नहीं हुआ था, परन्तु बिदेसर ठाकुर की भैंस वाली घटना को लेकर बेरमा में भी पहला मुकदमा दरोगा, नथुनी सिंह और विन्ध्यनाथ ठाकुर तीनों पर कोर्ट के माध्यम से किया गया।

हाई कोर्ट पटना से बिदेसर ठाकुर की भैंस की वरामदी हुई। वीरेन्द्र जी (माननीय न्यायामूर्त्ति, उच्च न्यायालय, पटना) ने इस केस को देखा था।

बिदेसर ठाकुर के केश-दादी या केशकट्टी का झगड़ा बढ़ता ही गया। उस बीच जजमानी वृत्ति को लेकर भी मामला तूल पकड़ लिया था। कई बार झंझट भी हुआ, पटका-पटकी, हाथा-पायी भी हुई थी, जिसमें बिदेसर ठाकुर को ही दोषी माना गया था। बिदेसर ठाकुर पर इतने मुकदमे हो गये, जिससे उसका एक भी ऐसा सदस्य नहीं बच पाया था जो जेल जाकर मर्यादा नहीं तोड़ी हो।

जगदीश प्रसाद मण्डल एकबार बिदेसर ठाकुर के साथ मधुबनी जिले के चकिया जेल में थे। बेरमा के दस लोग भी साथ में थे। बिदेसर ठाकुर बगल में जाकर गाजा पी रहा था।

गाजा पीते ही जेल के जमादार ने उसे देख लिया और पकड़कर उसे डंडा-बेड़ी कर दी। ऐसी परिस्थिति में क्या किया जा सकता था? पश्चिमी मधुबनी का एक काबिल व्यक्ति जेल में उसका साथी था। रात में खाने-पीने के बाद एक-डेढ़ घन्टा सांस्कृतिक कार्यक्रम किया जाता था। बिदेसर ठाकुर डंडा-बेड़ी के साथ आया और अपने बनाया हुआ दर्द भरा गीत गाया-

“मेरे जैसा कौन है बकलेल
बाल-बच्चा मिल भैंसी पाला
प्रमुख, नथुनी सिंह और दारोगा
आकर खुटा पर से ले गया खोल
मेरे जैसा कौन...
ज्योंही जेल के अन्दर आया
पीपल के नीचे गाजा लगाया
जमेदार आकर
डंडा-बेड़ी ठोक देल।
मेरे जैसा कौन...

पसीना बहाकर खेती किया
तुलसी-फूल व कनकजीर
खोह में से हीं
सरुप सिंह डौढ़ा में लिया तौल।
मेरे जैसा कौन...
और तो और कवि-कोकिल
महाकवि विद्यापति को
बहुत पहले ही छीन लेल।
मेरे जैसा कौन है बकलेल।।"

गीत गाकर उसने वृत्तांत सुनाया। मधुबनी का वह साथी काफी प्रभावित हुआ। उसकी गायन-शैली भी अच्छी थी, क्योंकि बिदेसर ठाकुर मनचोभिया नाच का अच्छा कलाकार रहा था और फिल्मी गीत भी गा लिया करता था। सुबह होते ही डंडा-बेड़ी हटवा दी गई और सब उसे 'कविजी' कहने लगे।

अन्तोगत्वा केश-दाढ़ी का मामला भी दूर हो गया। पंचायत रखा गया था। पंचायत में प्रमुख जी का पंच (बिन्ध्यनाथ ठाकुर का पंच) बौकू ठाकुर को माना गया और बिदेसर ठाकुर अपना पंच खूद बन गया। शर्त्त के अनुसार सुनने के लिए तो बात सब सुनेंगे परन्तु बोलेंगे केवल दोनों पंच ही। पंचायत में एक अलग आकर्षण देखने को मिला जो था, बौकू ठाकुर की भाषा और बोलने का ढंग अथवा बेढंग।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी हँसते हुए बोले- "जिन्दगी का पहला दिन ऐसी भाषा से भेँट हुई।"

एक तो आलंकारिक शैली, उस पर एक पंक्ति प्रमुख जी के पक्ष में बिदेसर ठाकुर के विरुद्ध तो दूसरी पंक्ति बिदेसर ठाकुर के पक्ष में प्रमुख के विरुद्ध। सुननेवाले लोग उलझन में पड़ जाते थे। पंचायत में सोलहआना पर कील का रहना जरूरी। पंचायत नहीं हो पाया।

नौआ समाज ने अन्त में फिर से जजमानों-गृहस्तों का बँटवारा कर

लिया और झंझट का अन्त किया।

बिदेसर ठाकुर का अन्त बहुत ही दर्दनाक हुआ। वह पेड़ पर से गिर गया था, जिस कारण उसकी हड्डियाँ टूट गई थीं। ईलाज करवाया, परन्तु ठीक नहीं हुआ। एक रात उसने अन्तिम साँस ले ली।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी सुबह में उठे ही थे कि उसे यह पता चल गया। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था, क्योंकि शाम में उन्होंने बिदेसर ठाकुर से बात की थी। जगदीश प्रसाद मण्डल जी काफी द्रवित और भावुक हो गये, परन्तु उन्हें इस बात से संतोष था कि बिदेसर ठाकुर सबकुछ देख-सुनकर, करके और घर बसाकर गये थे।

डायरी बीन जिन्दगी में...

डायरीबीन जिन्दगी में दिनांक और घटना की चर्चा होती है परन्तु दिन और महीना की नहीं। लौकही में कम्युनिस्ट पार्टी का जिला-सम्मेलन हुआ था, लौकही हाई स्कूल पर सम्मेलन का आयोजन किया गया था। लौकहा रेलवे स्टेशन से कुछ लोगों को छोड़कर संघर्षशील कार्यकर्त्ता जगदीश प्रसाद मण्डल ने अपने कुछ साथियों के साथ पैदल ही वहाँ पहुँचे, क्योंकि जीप-गाड़ी में जगह का अभाव था...।

भोगेन्द्र जी के साथ चार दिनों का सम्मेलन था। भीड़ उमड़ पड़ी थी। जिला भर के साथी आये थे।

सम्मेलन के दूसरे दिन दोनों प्रतिनिधि जगदीश प्रसाद मण्डल और राम अवतार राउत ने एक साथ भोगेन्द्र जी से मुलाकात की। भोगेन्द्र जी एक छोटे कमरे में सिमेन्ट पर अकेले जाजीम बिछाकर और चार हाथ का गमछा ओढ़कर आराम कर रहे थे, सोये नहीं थे। दोनों को पहुँचते ही उठकर बैठ गये और पूछ बैठे- “गाँव-घर का क्या हाल-चाल है?”

भोगेन्द्र जी में यह जबर्दस्त गुण था कि वे किसी बात को जड़ से पकड़ते

थे। उस बीच कपिलेश्वर राउत के यहाँ की श्राद्धवाली घटना हो चुकी थी। राम अवतार राउत ने सभी घटनाओं का जिक्र एक ही साँस में कह सुनाया। इसके साथ-साथ अपनी व्यथा-कथा भी कह सुनाई कि समाज ने कैसे-कैसे जोर लगाकर नैया पार की। यह सुनकर भोगेन्द्र जी गुम हो गये।

कुछ समय के बाद चुप्पी तोड़कर भोगेन्द्र जी ने अपनी बात भी कहीं। राम अवतार राउत के हाल में ही पुरोहित बन जाने पर वे खुश भी हुए और हर बात मानते गये। राम अवतार राउत ने पूछा-

"कॉमरेड, हमारे यहाँ का कार्यक्रम कैसा हुआ था?"

भोगेन्द्र जी ने जवाब दिया- "जैसे सीधा नाक छूना और घुमाकर छूना होता है, वैसे ही सूदखोरी और महाजनी भी सीधा छूना हुआ, शेष घुमाकार छूना हुआ। इसलिए इसे सामाजिक, आर्थिक रूप में देखो, सब कुछ समझ में आ जायेंगे। समाज के भीतर आर्थिक ढाँचा इस रूप में खड़ा हो चुका है जिसका समीकरण तैयार करना आज जरूरी हो गया है, मगर कौन करेगा?"

जगदीश बाबू ने कहा- "समाज का मैं सिपाही बनूँगा।"

सुनकर वे खुश हो गये। उसी बीच पूर्व विधायक लाल बिहारी यादव आ गये। सम्मेलन कार्य से दोनों बाहर निकल गये।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी मधेपुर जिला सम्मेलन के पश्चात् जिला नेतृत्व में आये और उन्होंने क्षेत्र में समय देना शुरू किया। गाँव-गाँव में फँसा हुआ झगड़ा, मुद्दा-समस्या एवम् लड़ाईयों पर विचार करना प्रारम्भ किया। कहीं मछली का व्यापार तो कहीं वर्चस्व का मामला, कहीं जमीन एक धूर नहीं तो कहीं पर जमीन्दार का फैला हुआ पाँव तो कहीं लेन-देन महाजनी का खेल। जिला सम्मेलन के कार्यक्रम में जो समस्याएँ रखी गई थी, उससे भी भिन्न लड़ाईयाँ क्षेत्र में थीं। लक्ष्मीकान्त-रामाकान्त साहु की जमीन पर बट्टेदारी मामला शुरू हुआ। बट्टेदारी मामला शुरू होते ही पोखरे पर श्राद्धी झोपड़ी जैसा आठ-दस घर खड़ा कर दिये गये। जगदीश प्रसाद मण्डल और उनके साथियों को देखकर जब वे आगे बढ़े तो उस नकली घरों में आग लगा दी गई और

अट्ठाइस लोगों को आगलगी केस में फँसा दिया गया।

इसी बीच एक घटना और घटी। किशुनदेव मण्डल चाय की दुकान करता था। वह भी कम्युनिस्ट पार्टी का जुझारू कार्यकर्त्ता था।

किशुनदेव मण्डल की चाय की दुकान जगदीश प्रसाद मण्डल और उनके साथियों की बैठक का अड्डा भी था। वहीं बैठकर ये लोग विचार-विमर्श किया करते थे। जगदीश प्रसाद मण्डल के साथ और चार-पाँच लोग उस दुकान में बैठे थे कि अचानक पच्चास से अधिक मुसहर कुदाल के साथ आ धमके और दुकान के आगे अन्ट-सन्ट बोलने लगे। जगदीश प्रसाद मण्डल और उनके साथी खड़े होकर जवाब देने लगे। मुसहर सब के हाथों में हथियार थे, उसपर से ताड़ी-दारू का नशा और दूसरों का प्रभाव भी।

तभी गाँव में हल्ला हुआ कि किशुन देव मण्डल के यहाँ हंसेड़ा-हंसेड़ी हो गई।

हल्ला सुनते ही लोग जहाँ-तहाँ से लाठी लेकर दौड़ पड़े। टोल और दुकान के बीच मार-पीट शुरू हुई, जबर्दस्त लड़ाई हुई। कई लोगों के कान-माथे फूट गये और कई घायल हो गये। केस-फौजदारी और जेल का डर समाप्त हो चुका था। अधिक मार खाने के बाद मार खाने की आदत सी बन जाती है- वह साधारण बात लगने लगती है।

एकतीस दिनों के भीतर ही उन अट्ठाइस मुद्दालयों का जमानत मिल गया।

जमानत मिलने के बाद जमीन का दखल-कब्जा शुरू हुआ। बहुत गड़बड़ हो गया था। जो बट्टेदार था, उसने केस नहीं किया था, परन्तु जो बट्टेदार नहीं था, उसने मुकादमा किया था। स्पष्टत: गाँव दो भागों में बँट गया था। दो पक्षों का बनना तो स्वाभाविक ही था, परन्तु तीसरा पक्ष भी था जो खुलकर सामने नहीं आना चाहता था। कुछ भी हो पहले ही धक्का में जमीन्दार समझ गये कि जमीन चली जायगी। उसने जमीन बेचना शुरू कर दिया। जमीन से सम्बन्धित कुछ पुराने कानून भी थे और नये भी बने थे, जैसे हदबन्दी। तीस-

चालीस वर्ष पहले बकास्त की लड़ाई भी चली थी। वैसे बकास्त की लड़ाई आसानी से सम्पन्न हुई थी। जमीन अधिकार की चीज होती है। कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से केस लड़कर बिना अधिकार का भी दखल कर लिया था। इस प्रकार जमीन में पेंच ही पेंच।

जमीनों के पेंच में आया यह भी कि बट्टेदारी कानून को लेकर पिछले सर्वे में सिकमी बटाई के आधार पर खतियान बन चुका था। भूदान आन्दोलन भी आ चुका था। जमीन का छठवाँ हिस्सा का दान- भूदान। हदबन्दी कानून भी आया था, आर्थात् बीस बीघा से ऊपर वाले जमीनवालों की शेष जमीन ले ली जाती थी। इस तरह जमीन से सम्बन्धित लड़ाईयाँ हर जगह चल रही थीं, परन्तु पश्चिमी मधुबनी में जबर्दस्त- जोरदार। जाति-धर्म के नाम पर विरोधी सब कम्युनिस्टों को घेरते थे, जबकि कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर ब्राह्मण नेतृत्व अधिक थे। कम्युनिस्ट पार्टी सभी जातियों की पार्टी थी। पश्चिमी कोसी नहर, मैथिली भाषा और जमीन के सवाल का मुद्दा सब दिनों से इस पार्टी का रहा था।

सामाजिक वातावरण में हल-चल मच गया था। भूदान आन्दोलन का स्वरूप बिगड़ गया था। एक ही जमीन पर तीन-तीन लोगों ने पर्चा बनवाकर विवाद खड़ा कर दिया था।

बेरमा में कम्युनिस्ट विरोधी लोग मौका पाकर नंगे पैर नाचने लगे। लूट-पाट का माहौल बन गया, चोरी-डकैती बढ़ गई, दहेज के लिए जमीन बेचनी पड़ रही थी- विषम परिस्थिति और विकट समस्याएँ...। चोरों का आतंक उस घटना के बाद कम हो गया, जब एक चोर को पेड़ से लटकाकर मारा-पीटा गया और दूसरे को सामूहिक रूप से पीटा गया था।

झंझारपुर के लक्ष्मीकान्त साहु का हिस्सा कृष्णचन्द्र झा उर्फ कैलू मास्टर ने और उसके भाई रमाकान्त साहु का हिस्सा बैजनाथ मण्डल ने खरीद लिया था, जिसपर कम्युनिस्ट पार्टी ने महादेव मण्डल- बैजनाथ मण्डल के ज्येष्ठ भाई से बट्टेदारी केस करवाया था।

काविल और कर्मठ जगदीश प्रसाद मण्डल जी को आगलगी केस का जमानत करवाना था। वे अट्ठाइस मुदालयों का जमानत के लिए अट्ठाइस गवाहों को लेकर गये थे। बैजनाथ मण्डल ने गाँव से बाहर निकलते ही शोर मचाया और गाँव में लोगों को एक चिट्ठी दिखाते हुए कहा कि कैलू मास्टर के बेटा ने मेरी माँ-बहन को गाली लिखकर भेजी है। वैसे अभी भी जगदीश प्रसाद मण्डल जी को वह चिट्ठी हस्तगत नहीं हुई है। मगर अन्दरूनी बात यह थी कि दोनों पार्टी सोलहआना जमीन को अपने-अपने कब्जे में रखना चाहते थे- एक जबुरिया तो दूसरा बलजोरी करके।

जगदीश प्रसाद मण्डल और अन्य लोगों ने आकर महादेव मण्डल द्वारा की जा रही बटाई को रोक दिया, क्योंकि उसका ही छोटा भाई ने, अर्थात् बैजनाथ मण्डल ने उस जमीन को खरीद लिया था। एक झगड़ा को शान्त किया।

जगदीश प्रसाद मण्डल आगलगी केस का जमानत करवाकर बेरमा पहुँचे ही थे कि कुछ लोगों ने कहा कि कैलू मास्टर के बेटा को बैजनाथ मण्डल ने पीटा है और पकड़कर अपने दरवाजे पर लाकर भी रखा है।

कुछ देर के बाद कैलू मास्टर की बहन, जो वर्त्तमान में है, हीं, परन्तु रोगग्रस्त है, दौड़ी हुई जगदीश प्रसाद मण्डल जी के पास आई और कल्पती हुई बोली- "बैजनाथ मेरे भतीजे को मारा है और पकड़कर रख भी लिया है, उसे छोड़ देने के लिए कहिये।"

जगदीश प्रसाद मण्डल जी उलटे पांव अर्थात् बिना समय गंवाये वहाँ गये। बैजनाथ मण्डल ने कैलू मास्टर के बेटा को छोड़ दिया। इसी को कहते हैं, नेतृत्व की क्षमता जो जगदीश प्रसाद मण्डल जी में थी। चाहे अपना नुकसान ही क्यों न हो, वैर मोल क्यों ने लिया जाय, फिर भी भलाई में लगे रहते थे।

धारा 307 के तहत इस घटना का रूप दे डाला। कैलू मास्टर ने बैजनाथ मण्डल के तीनों भाईयों को, जगदीश प्रसाद मण्डल जी को, राम अवतार राउत को और सत्य नारायण मण्डल को मुदालय बना दिया। इसमें सबको सजा मिल गई। माननीय हाई कोर्ट ने फैसला सुनाया। वीरेन्द्र जी (माननीय न्यानमूर्त्ति, हाई कोट पटना) ने इसमें काम किया था। जगदीश बाबू के कार्य

स्मरणीय है एक वृत्त-चित्र यहाँ उभरकर आया है-

कभी राम, कभी कृष्ण
कभी विष्णु तो कभी जगदीश
कभी गाँधी कभी बुद्ध
कभी बाबा अम्बेदकर तो कभी कबीर
धरती पर आते हैं
आते हैं, जगदीश प्रसाद मण्डल
जैसा कर्मवीर..!!! **-रामेश्वर प्रसाद मण्डल**

लक्ष्मीकान्त साहु और रामाकान्त साहु की जमीन की लड़ाई के बाद बेरमा में एक भी जमीन्दार नहीं रहा। मगर कहावत है ‘दो के झगड़ने से तीसरे को मुनाफा’ के रूप में या ‘लूट में चरखा नफा’ सदृश्य कुछ लोगों को लाभ तो हुआ हीं। कुछ भी हुआ, परन्तु गाँव की जमीन गाँव वालों के हाथ आ गई।

भूदान आन्दोलन...

भूदान आन्दोलन का स्वरूप बेरमा में अधिक नहीं निखरा क्योंकि जिस समय में यह आन्दोलन अपने रूप में आया बेरमा में उस समय ऐसे जमीन वाले नहीं थे। गठरी झा को राज दरभंगा की ओर से 700 बीघा जमीन पण्डिताई में राज-ब्रह्मोत्तर के रूप में मिली थी। वह बेरमा में नहीं था, गाँव से बाहर था। गाँव का मालिक-मालकिन भी भूदान में कम ही जमीन दे सका क्योंकि बँटबारा से पहले ही वे बेच चुके थे। इसके साथ-साथ ऐसे-ऐसे कार्यकर्त्ता को जमीन का सबूत और बाँटने का भार दिया गया था जो और डूबा ही दिया। एक ही जमीन का पर्चा तीन-तीन लोगों के हाथ बाँट दिया गया जिससे उलझन और बढ़ गया। जमीन कमजोर या निर्धन के हाथ देनी थी, परन्तु क्या ऐसा बँटवारा सम्भव हुआ?

बेरमा में भूदान-आन्दोलन से वैसा लाभ नहीं मिला जैसा मिलना

चाहिए, फिर भी बसने के लिए बासडीह की जमीन की समस्या जरूर हल हुई, कारण था, आम जमीन लक्ष्मीकान्त साहु की जमीन और गंज के गंगाराम-भोलाराम मण्डल की जमीन का छीना जाना। इसके साथ कुछ लोगों ने खरीद भी लिया था।

बेरमा के सतदेव वंशज की लड़ाई...

बेरमा के सतदेव झा का कोई बेटा नहीं हुआ था। केवल उसे एक बेटी थी। गरीबी के कारण बेटी की शादी अधिक उम्र के लड़का से उसने करा दी थी। इसका नतीजा यह हुआ कि दो सन्तान के बाद दमाद मर गये। सतदेव झा का अपना परिवार भी छोटा ही था। उसने दोनों दोहित्र-नातियों के साथ बेटी को बेरमा बुला लिया। कलकत्ता में एभरेडी बैट्री कम्पनी से रिटायर होने के बाद गाँव आकर पाँच बीघा जमीन खरीद कर एक बोरिंग और एक दमकल खरीदकर व्यवस्थित हुआ। खेती के लिए एक जोड़ा बैल लिया और घर बनवाया। बहुत अच्छा तो घर नहीं था परन्तु मजबूत जरूर था। परन्तु जिस जमीन पर उसने घर बनाया, वह पहले ही दूसरे हाथों बिक गई थी, परन्तु रजिस्ट्री नहीं हुई थी। सतदेव झा ने धोखा देकर रजिस्ट्री करवा ली और उस पर कब्जा भी कर लिया, लेकिन समाज की नजर में यह अनुचित काम था।

सतदेव झा ठीक से खेती नहीं कर पाता था, कलकत्ता शहर में समय बिताने से उस पर उसका उसर भी था और दोनों नाती भी बच्चे ही थे। अर्जन किया हुआ धन समाप्त हो गया, मगर खाने-पीने की आदत, खर्चीली जीवन शैली तो बन ही चुकी थी, फिर भी क्या था, वह खेत बेचना शुरू किया। और तब तक ज्येष्ठ नाती का विवाह भी करवा चुका था। जब आधी से अधिक खेत बिक गये तो उसकी बेटी और दोनो नातियों ने झगड़ा शुरू किया। झगड़ा का कारण बेटी और दोनों नातियों का यह कहना था कि हमलोग अपना गाँव को छोड़कर बेरमा आये हैं यदि यहाँ की सभी जमीन बेच लेंगे तो हमलोगों का क्या होगा? ये दोनो प्राणी बूढ़े भी हो गये है, दो-चार साल में मर भी जायेंगे, किन्तु

हमलोग कहाँ जायेंगे?

सतदेव झा ने इनलोगों से दूरी बढ़ा ली और कम्युनिष्ठ विरोधियों से नाता जोड़ लिया। उसका नाती 'प्रमोद झा' अपना ससुराल भोज-परोर गाँव, रहिका प्रखण्ड गया और उसने श्वसुर को सभी बात बतला दी। श्वसुर के साथ-साथ बेरमा आया। वह गाजा पीता था और अभी भी पीता है। बेरमा में तीन-चार दिन ठहरा। गाजा पीयकरों का एक दल तैयार किया, जिसमें कम्युनिस्ट पार्टी के लोग भी थे। उसने सबको बुलाकर भोजन करवाया और संकल्प लिया कि सतदेव झा जहाँ मिलेंगे पकड़कर अगूँठा निशान ले लेंगे। इस षड्यंत्र की जानकारी जगदीश प्रसाद मण्डल सब को नहीं थी। लेकिन षड्यंत्र के अनुसार काम भी हो गया। चार पाँच लोग बधार में सतदेव को पकड़कर और पटककर स्टाम्प पर निशान ले लिया। विरोधियों को मौका हाथ लग गया। उसने जगदीश प्रसाद मण्डल और अन्य सभी को मुदालय बनाकर केस कर दिया। क्योंकि थाना उसके साथ था, इसमें जमानत तो हुआ ही, परन्तु एक को कुर्की-जब्दी भी हो गई, घर का किवाड़ खोल लिया और दमकल भी शील कर लिया गया।

सतदेव झा की ग्यारह कट्ठा जमीन जगदर में भी थी। जगदर के नथुनी सिंह का कहना था कि जमीन बिक चुकी है। सतदेव झा (बेरमा) उससे उलझ गया। खेतों में धान लगे थे, धान काटते समय झंझट हुआ। बेरमा और जगदर आपस में लड़ गये परन्तु अपना पक्ष कमजोर देखकर नथुनी सिंह अपने लठैतों के साथ पीछे हट गया।

बेरमा का जगदर से दूरी का कारण यह भी था- पाँचवे दशक में जगदर से एक व्यक्ति बेरमा आया और अपने संग एक कुत्ता भी ले आया। जगदर के कुत्ता और बेरमा के कुत्ता में पटका-पटकी हो गई। लोगों ने कुत्ते वाले को गाली देनी शुरू की। बात बढ़ चली। जगदर की हसेड़ी-लठैत बेरमा पहुँच गई। जबर्दस्त लड़ाई हुई जिसमें जगदर के लोग मार खाकर घर वापस गये थे। बाद में मामला तो ठंढा हुआ, परन्तु उष्णता रह ही गई थी। एक और भी घटना हुई थी। चनौरा के महंथ का दरभंगा के महंथ से झगड़ा हुआ। चनौरा के महंथ का जगदर के नथुनी सिंह असली चेला और गायक था। उसने दरभंगा में मारपीट

करने की योजना बनायी। वहाँ लठैतो के साथ पहुँच भी गया लेकिन वहाँ चनौरा के महंत के साथ नथुनी सिंह और नथुनी सिंह के साथ जगदर और बेरमा के लठैत सब भरपुर मार खाये और जेल भी गये। इतना ही नहीं जेल के भीतर भी पीटे गये थे।

1978 ईस्वी में पंचायत चुनाव हुआ। जगदीश प्रसाद मण्डल भी उम्मीदवार बने। उनका सीधा मुकाबला प्रमुख बिन्ध्यनाथ ठाकुर से था। पंचायत चुनाव में जो घृणित कार्य किया जाता है वे सभी विपक्ष ने किया। जगदीश प्रसाद मण्डल जी को बेवश कर दिया गया। मध्यस्यता करने के लिए और विरोधियों को समझाने के लिए नेता भोगेन्द्र जी भी आये। उन्होंने पंचायत रखने की बात कही थी। परन्तु पंचायत में पंचों के बीच ही विवाद फँस गया।

चुनाव घोषणा के विरोध में मुखिया और सरपंच कोर्ट पहुँच गये। सरपंच के मामले का फैसला थाना में ही हो गया परन्तु मुखिया का मामला होइकोर्ट पटना पहुँच गया। चुनाव को अवैध करा दिया गया। स्थिति ऐसी रही कि जैसे ठाकुर की बारात में सब ठाकुर ही ठाकुर वैसे ही पंचायत के मुखिया बिना सब मुखिया ही मुखिया- जगदीश प्रसाद मण्डल जी भी मुखिया..।

गाँव के वातावरण में अस्त-व्यस्तता थी, क्योंकि सामंती व्यवस्था टूट रही थी और चुनाव के समय में बुथ पर अपराधी प्रवृत्ति के लोगों ने लाठी नचाई भी और गिनती के समय दस-बारह बैलेट प्रमुख विन्ध्यनाथ ठाकुर के एक एजेन्ट ने जल्दी-जल्दी खाना शुरू किया, परन्तु तभी पार्टी के एजेन्ट ने पाँच-सात थप्पड़ उसके मुँह पर मारा कि मुँह से उगल दिया। उस पर केस हुआ और उसे छ: वर्षो की सजा मिली और जेल में रहना पड़ा।

एक घटना ऐसी भी है कि एक अपराधी ने शिवलाल महतो के खस्सी की चोरी में पकड़ा गया, उसे आदत छुड़ाने वाली मार लग गई। एक अन्य अपराधी ने दूसरे के साथ ऐसी ही घटना कर दी छीटपुट घटना होती ही रही। कैसा वह चुनाव था?

जगदीश प्रसाद मण्डल और आई.पी.एस. कालीकान्त झा...

बेरमा के बगल में पुरब में कछुबी गाँव है। काली बाबू (कालीकान्त झा) कछुबी निवासी, 1969 बैच के आई.पी.एस. अफसर थे, वे गाँव आये थे, झंझारपुर किसी काम से जा रहे थे। मार्ग- कछुबी से बेरमा और बेरमा से झंझारपुर, जगदीश प्रसाद मण्डल जी के घर से सीधा पुरब उनका घर था, वे पैदल और अकेले ही जा रहे थे। जब बेरमा के मुसहरी टोल पहुँचे तो वहाँ से दिशा के दो रास्ते दिखलाई दिये; जो आगे जाकर आपस में मिल जाते थे और जहाँ से सीधे झंझारपुर जा सकते थे। मुसहरी के बगल में बह्मस्थान है, जो जगदीश प्रसाद मण्डल जी के बगल में है, पुरब में है। काली बाबू ब्रह्मस्थान से आगे बढ़े तो जगदीश प्रसाद मण्डल जी के दरवाजे पर पहुँच गये, वैसे चेहरा से काली बाबू को वे पहचानते थे परन्तु एक स्कूल में दोनों को साथ-साथ पढ़ने का मौका नहीं मिला था। गाँव के स्कूल से निकलकर काली बाबू नवानी पढ़ने गये तो वहीं जगदीश बाबू गाँव के स्कूल से निकलकर कछुबी पढ़ने गये, इसी प्रकार से आगे भी दोनों एक साथ नहीं पढ़ सके।

मिडिल पास करने के बाद जब कालीकान्त झा को धारा प्रवाह संस्कृत भाषा पढ़ने आ गया तो पिताजी ने संतुष्ट होकर तमुरिया हाई स्कूल में उसका नाम लिखवा दिया । वैसे तो उस समय बिना सर्टिफिकेट के सीधे दसवाँ वर्ग तक नामांकन हो जाता था। दसवाँ-ग्यारहवाँ मिश्रित सिलेबस को मैट्रिक कहा जाता था। उस समय वर्गोन्नति पद्धति भी स्कूल में थी, मतलब पास और फेल। पास को वर्गोन्नति मिलती थी और फेल को रोक लिया जाता था। दसवाँ-ग्यारहवाँ के बीच एसेसमेन्ट की प्रथा भी थी। दो सौ नम्बर का एसेसमेन्ट होता था और अस्सी-अस्सी अंक का विषय। एसेसमेन्ट का नम्बर जो विद्यालय से भेजा जाता था, उसे मैट्रिक बोर्ड परीक्षा के रीजल्ट में जोड़ दिया जाता था परन्तु वाईस अंक प्रति विषय लाने पर ही विद्यार्थी को पास घोषित किया जाता था, उस समय यह भी मान्यता थी कि समाज-अध्ययन में दस अंक ही पास के लिए निर्धारित किया गया था लेकिन इतना अंक भी लाना कठिन हो जाता था क्योंकि समाज-अध्ययन कठिन विषय बना हुआ था।

उस समय, संकाय पद्धति लागू थी- आर्ट संकाय, साईंस संकाय और

कॉमर्स संकाय, मगर शिक्षण का वातावरण ऐसा था कि साईंस के विद्यार्थी अधिक अंक लाते थे। एक सौ में एक सौ तक मतलब यह कि आर्ट खिसकता था परन्तु साईंस दौड़ता था। फिर भी काली बाबू ने आर्ट विषय से परीक्षा देकर विद्यालय में सबसे ज्यादा अंक प्राप्त कर लिया।

ऐसा रिजल्ट लाकर और कारामात कर वे चर्चित हो गये, समीक्षा हुई तो काली बाबू ने स्पष्ट किया था- 'खाना खाकर स्कूल जाने वक्त हाथ की हथेली पर पाँच अंग्रेजी शब्द और एक प्रश्न का उत्तर लिख लिया करता हूँ और स्कूल से लौटते समय भी यही करता हूँ। स्कूल पहुँचने पर हाथ धोकर साफ कर लेता हूँ तब बैठता हूँ वैसे शिक्षा पद्धति में भी अन्तर है रटने की बात सब तरह से है।'

प्रथम श्रेणी से कालीकान्त झा ने मैट्रिक पास किया, वे गरीब थे लेकिन उतना नहीं क्योंकि वे महापात्र परिवार के थे। उस समय सी.एम. कॉलेज दरभंगा को बहुत अच्छा माना जाता था और उसमें अच्छे विद्यार्थियों का ही नामांकन होता था।

जनता कॉलेज झंझारपुर और सरिसव कॉलेज खुल चुके थे। मधुबनी में आर.के. कॉलेज को भी अच्छा माना जाता था।

परन्तु सी.एम. कॉलेज दरभंगा सरकारी कॉलेज था, जिसमें नामांकन की सीमा निर्धारित थी। इसलिए सी.एम. कॉलेज की इच्छा रहते हुए भी काली बाबू ने सरिसब कॉलेज में अपना नाम लिखवाया, कारण भी था वहाँ दो छात्रों को पढ़ाने पर खाने-पीने और रहने का प्रबन्ध हो गया। दूसरा कारण सहयोग के अभाव का रहने के कारण भी सी.एम. कॉलेज नहीं चुना। इसके बाद दरभंगा में भी रहने की व्यवस्था हो जाने से अंग्रेजी ऑनर्स में सी.एम. कॉलेज में नाम लिखवाया और वहाँ से बी.ए. अंग्रेजी ऑनर्स किया।

इस तरह दोनों ने अलग-अलग कॉलेज में शिक्षा लेकर अपने-अपने भविष्य का निर्माण किया था।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने अपने दरवाजे पर कालीकान्त झा जैसे आई.पी.एस. अफसर को देखा तो अपने को सौभाग्यशाली समझा। उन्हें हाथ

पकड़कर दरवाजे पर बैठाया। जब कारण पूछा तो काली बाबू ने बताया- “झंझारपुर जा रहा हूँ। वहाँ एक जरूरी काम है।”

जगदीश प्रसाद मण्डल ने कहा- “आप अकेले हैं और उस पर से पैदल भी, कठिनाई होती होगी।”

कालीकान्त बाबू चुप थे। जगदीश बाबू पुन: जोर दिया- “मैं भी साथ चलता हूँ। कुछ बातचीत करने का अवसर मिल जाएगा।”

परन्तु वे पुलिसी नजर से बोले- “साईकिल दे दीजिए, वापसी में दे दूँगा।”

जिन्दगी में दोनों की पहली मुलाकात हुई थी। यह अन्दाज में नहीं आया था कि सम्बन्ध इतना गाढ़ा हो जाएगा। जो जीवन तक निभाया जाएगा। अन्दाज में नहीं आने का कारण भी था कि कई पुराने हित-अपेक्षित टूट चुके थे। परन्तु नये बढ़े भी थे।

जैसे गाँव का ही एक साथी था जो कॉलेज में साथ-साथ पढ़ा था, मगर उसे जाति की सीमा ने घेर लिया था। उसे स्टेट बैंक में नौकरी मिल गई। वे समय पर घर भी आते थे परन्तु मुलाकात नहीं करते थे। पैसा तो खुब कमाते थे, परन्तु व्यवहार को गंवाते थे। कुसंयोग ऐसा हुआ कि दस-बारह वर्ष के बाद स्कूटर एक्सिडेन्ट में बुरी तरह घायल हो गये और अन्त में सही ईलाज नहीं होने के कारण मर गये। जगदीश प्रसाद मण्डल जी को अभी तक उस बात का दु:ख होता है कि अपने उस मित्र को देखने नहीं जा सका। मगर जिन्दगी के अनुभव के दर्पण में झाँका तो पाया कि दोस्त और दुश्मन के बीच की दूरी नहीं समझने पर हस्र क्या होता है, वे समझ चुके थे।

जैसे जगदीश प्रसाद मण्डल जी का एक अपेक्षित था। उसके यहाँ विवाह था वे रात-दिन उसके यहाँ रहते थे। मगर उस व्यक्ति को दोस्त और दुश्मन की पहचान नहीं थी। दुश्मन तो मौका का फायदा उठाता है। वहाँ उसका ऐसा ही दुश्मन था जो दाल में दो बार नमक डाल दिया जब दाल अधिक नमकीन हुई तो जगदीश प्रसाद मण्डल जी का नाम कह दिया।

ऐसा ही घटना दूसरी जगह हुई बर्तन में बिना अदहन-पानी रहते हुए दाल गिरा दी और जगदीश बाबू को बदनाम कर दिया।

ऐसे कई ओर उदाहरण है, एक बार दुर्गा पूजा समिति के जगदीश प्रसाद मण्डल जी मुख्य कार्यकर्त्ता थे। उन्हें नाच का भार दे दिया गया। उस समय नाटक-नौटंकी का प्रचलन कम हो चुका था और नाच सब पर हावी हो चुकी थी। गाँव के एक व्यक्ति ने नाच लाने की जवाबदेही ले ली। नाच का खूब प्रचार हुआ मगर जितने गरम जोशी से प्रचार हुआ उतने ही उपहास भी हुआ।

जब कोई परिवार से बाहर निकलकर समाज में कदम बढ़ाता है तो हानि-लाभ की तौल-जोख अवश्य करता है, लोग तो भरपूर करता है लेकिन त्रुटि रह ही जाती है। तब क्या कर ही सकता है। आवश्यकता यह है कि कार्यों पर नजर हमेशा रखनी चाहिए। बीमार पड़ने पर रोगी को लोग अपना-अपना सुझाव देता है, जो हितकारी भी होता है, और अहितकारी भी।

स्वर्गीय कालीकान्त झा उर्फ काली बाबू की पहली बहाली डी.एस.पी के रूप में अगरतला (त्रिपुरा) में हुई थी। उस समय चार सौ रूपये प्रति महीना मिलता था। वे स्वयं कहते थे...“सिगरेट और दारू पीता था, करीब पाँच वर्ष तक पीया घर में कलह का कारण एक साधारण सिपाही जो दस बीघा खेत खरीद लेता, तीन मंजिला मकान बना लेता है, पाँच लाख खर्च करके बेटियों का विवाह कर लेता है, अपने लोगों को नौकरी भी लगा देता है, उस जगह ये काली बाबू केबल मुँह से ही अफसर हैं। परन्तु काली बाबू परिवार को बुनियादी ढंग से व्यवस्थित करना चाहते थे। अपने खानदानी वृत्ति को अच्छा नहीं समझते थे। परिवार कर्ज में डूबा था। दियाद का झगड़ा कोर्ट में चल रहा था। जिसे फैसला कर किसी तरह से हल कर दिया था। कर्ज से परिवार को मुक्त किया और अन्त में घर बनाने के प्रयास में जुट गये। भट्ठा लगाकर ईंट पकवायी और अपने मझिले भाई को अगरतला के हाईस्कूल में काम लगवा दिया।

काली बाबू साल में एक बार गाँव निश्चित आते थे। और एक महीने तक गाँव में रह जाते थे। उस अवधि में तीन-चार बार जगदीश प्रसाद मण्डल जी से

मुलाकात हो जाती थी। उनका अपना समय तालिका था। कार्यों की सूची और समाधान की तिथि तैयार कर आते थे। साथ-साथ कुटुम्ब परिवार में भी जाते थे। एक कार्य का भार जगदीश प्रसाद मण्डल पर भी सौंप देते थे। इस प्रकार दोनों के बीच आत्मीयता बढ़ती गई। आत्मीयता इतनी गहरी हुई कि खाना-पीना भी शुरू हो गया। उन्होंने जगदीश बाबू को त्रिपुरा आने का आमंत्रित किया। मगर जगदीश बाबू तो थे, बेवश। परिवार से लेकर केस-फौदारी और उसके लिए खर्चा का इंतजाम करना। न तो कोर्ट आने-जाने से छुट्टी और न हीं दूसरी ओर जाने की ही छुट्टी।

1988 ईस्वी आते-आते जगदीश प्रसाद मण्डल जी को पूर्वांचल देखने की दृढ़ इच्छा जाग उठी। समय भी कुछ अनुकूल बनने लगा था। पचास से अधिक मुकदमे भी सुलझ चुके थे। जिस कारण कोर्ट आना-जाना कम हो गया था। केवल दो सेसन केस धारा- 307 का, हत्या करने का प्रयास किया जाने वाला था और धारा- 436 का, जो आग लगी वाला था। ये दोनों बच गए थे, इसमें भी धारा- 436 आगलगी वाला मुकदमा गुम हो चुका था। क्योंकि उस समय कोर्ट की अदला-बदली हुई थी। अर्थात् झंझारपुर से मधुबनी स्थानान्तरण के कारण वह फाइल गुम हो गया था।

वैसे कई लोगों के मुँह से सुना था कि केस का फायल भी गायब हो जाता है और केस खो भी जाता है। इस बात को लेकर उन्हें खुशी और चिन्ता दोनों थीं।

हजारों देवी देवताओं से माँ दुर्गा-जगदम्बा शक्तिशाली होती है। वैसे ही दोनों केस भी थे। इसका अनुभव हो गया था।

एक दिन जगदीश प्रसाद मण्डल जी सभी मुकदमों का जोड़-घटाव करने लगे, असम्भव-सा लगा। फिर साकारात्मक दिशा में गये तो एक निष्कर्ष मिला कि जिस तरह अधिक से अधिक फले हुए आम का पेड़ सुखते वक्त या आँधी-तूफान में धड़धड़ाकर गिर जाता है और उसकी गिनती इके-दूके में होने लगती है। वही केसों का हाल हुआ।

सावन के साँप की तरह केंचुआ छोड़ता मौसम को देखकर जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने अपनी जिन्दगी बदलने पर विचार किया। मगर पिछली जिन्दगी पर विचार किया। मगर पिछली जिन्दगी अगली को ऊपर उठानेवाला खुट्टा या सोंगर बन गया था। साहित्य दिशा की ओर बढ़ने का विचार मन में आया। साहित्य के छात्र तो रह चुके थे। सुर का पता तो था ही, चुन-चुन कर कुछ साहित्यकारों के साहित्य पढ़ने लगे। परन्तु मन फिर ठिठक गया। इसका कारण था कि किताब की बात यदि आँखों से देखी हुई होगी तो वह और अधिक अच्छी होगी। किताब खरीदने का खर्च में कटौती करके जगह-जगह घूमने का विचार किया। केरल, कर्नाटक, कश्मीर आदि को छोड़कर सभी राज्यों को घूम-घूम कर देख लिया। लेकिन जून 2012 ईस्वी में केरल की धरती पर कोच्चि में जब 'गामक जिनगी' कहानी संग्रह के लिए टैगोर साहित्य पुरस्कार प्राप्त हुआ तो केरल भी घूम आये। केरल राज्य में शत-प्रतिशत लोग शिक्षित मिले और मिलकर खुश हो गये।

जगदीश प्रसाद मण्डल अभी तक इतना ही भूगोल जान रहे थे कि देश के पूर्वी भाग असम है। अन्य-अन्य राज्य जो बना, वह बाद में बना और जिसकी चर्चा भी संक्षेप में थी।

आश्विन महीना में जगदीश प्रसाद मण्डल जी एटलस निकालकर अजमाईस करने लगे। उन्हें त्रिपुरा के मार्ग-चार्ट तैयार करना था। वही हुआ। गाँव से बिराटनगर, नेपाल और बिराटनगर से सिलीगुड़ी फिर सिलीगुड़ी से असम तथा असम के गुवाहाटी से त्रिपुरा।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी रूट-चार्ट के अनुसार त्रिपुरा के लिए प्रस्थान किया। रूट-चार्ट का अनुसरण करते हुए सिलीगुड़ी आये। यहाँ रहने की व्यवस्था थी। सिलीगुड़ी से गुवाहाटी आये। गुवाहाटी से अगरतला के लिए चार बजे अपराह्न में बस खुलती थी। वह बस उन्हें दूसरे दिन डेढ़ बजे में अगरतला ले आई। बस से उतरने पर तो उन्हें असुविधा होने लगी, जो भाषा की दूरी थी। बस तक तो हिन्दी से काम चल चूका था, परन्तु आगे क्षेत्रीय भाषा और वहाँ के निवासी का धुरझार अंग्रेजी में बोलना उन्हें सोच में डाल दिया था। अधिक भूख

लगी थी। इसलिए होटल में जाकर भोजन किया। मगर उन्हें एक अन्तर समझ में आया कि सिलीगुड़ी में जो सस्ता खाना मिला वैसा और आगे कहीं नहीं मिला। जैसे, बरपेटा, असम में एक बजे रात में बस एक होटल के आगे रूक गई। सभी यात्रीगण उस होटल में पहुँच गये, जिसमें तीन बसों की यात्रियों की व्यवस्था थी। चार रोटियाँ और सब्जी का दाम बीस रूपये लिया। मगर उनहोंने देखा कि एक प्लेट मछली या एक प्लेट मांस जो खाया उससे एक सौ रूपया लिया। जिसका सिलीगुड़ी में मात्र दो रूपये पच्चास पैसे लगता था।

होटल से बाहर आकर नजदीक के थाने में गए। वहाँ हिन्दी बोलने या समझने वाला कोई नहीं था। परन्तु काली बाबू का नाम कहते ही कोई एक सिपाही उन्हें काली बाबू के डेरा पर ले गये। करीब अढ़ाई बजे दिन में जगदीश प्रसाद मण्डल जी डेरा पर पहुँचे थे। सुन्दर फुलवारी, आठ कमरों का अच्छा डेरा तथा होमगार्ड की ड्यूटी। सर्वप्रथम काली बाबू की पत्नी ने ही उसे देखा, कारण भी था कि पत्नी सामने वाली कोठली में थी। उसने गेट खोल दिया और आकर काली बाबू को जगदीश बाबू का आने की सूचना दी। काली बाबू डेरा के सबसे दक्षिणवारी कोठली में जमीनपर सतरंजी बिछाकर आराम कर रहे थे। वे हलचला गये और जगदीश प्रसाद मण्डल जी को एक कमरा दिखाते हुए बोले-

“इसमें झोला-सामान रख दीजिए।” फिर बाथ रूम दिखाते हुए काली बाबू बोले- “गाड़ी के झकझोड़ से परेशान होंगे, पहले स्नान कर लीजिए।”

जगदीश बाबू का मन भी वैसा ही था। वैसा ही किया और स्नान कर उस कमरे में आ गये कि तभी काली बाबू आये और बोले- “खाने के बाद आराम कीजिएगा।” इस पर जगदीश प्रसाद मण्डल जी बोले- “भूख लगी हुई थी, बस स्टेंड में ही खाना खा लिया।”

शाम के समय चाय पीने के बाद दोनों व्यक्ति टहलने के लिए गये। काली बाबू दुहराकर लुंगी जैसे धोती और बिना गंजी का ही कुर्त्ता पहने थे, कारण था वहाँ का मौसम। डेरा से बाहर आकर पश्चिमी डेरा को दिखाते हुए उसके सम्बन्ध में बतलाया- “यह डी.एम. का डेरा है जो मणिपुर के है और

1984 बैच के आई.ए.एस. है।”

अपने डेरा के आगे दोनों को खड़े देखकर डी.एम. साहब बाहर आये, काली बाबू बंगला में बोले-

“बन्धु है।” इसके बाद हिन्दी में बातचीत की। आगे आई.जी. का डेरा था। आई.जी. के बेटे की दोस्ती काली बाबू के बेटे से थी। डेरा के आगे पहुँचते ही वे बाहर आ गए। आई.जी. साहब बंगाली थे। अगरतला बंगाली भाषा क्षेत्र है।

पहले दिन दोनों ने 1960 ईस्वी तक के और अपने चार कोस के विद्यार्थीयों पर गहन चर्चाएँ की। दूसरे दिन चाय पीते समय काली बाबू ने जगदीश बाबू से कहा- “आज ऑफिस चलेंगे और दक्षिण में जो बुढ़ी काली मन्दिर है वहाँ तक जाऐंगे।”

दस बजे सबेरे दोनों व्यक्ति ऑफिस गए। सभी ऑफिस बड़े-बड़े थे, परन्तु उनका अपना ऑफिस छोटा था। एक आलमारी, दो कुर्सियाँ और एक टेबुल। सीधे वे अपने ऑफिस के कमरे में पहुँचे तभी एक बंगाली चपरासी जो बी.ए. पास था, वहाँ पहुँचा। काली बाबू ने आदेश किया- “चाय पिलाओ।” चाय पीकर दोनों वहाँ से विदा हुए। चाय के बगान की ओर बढ़े। सड़क की दोनों ओर पहाड़ी भूमि और चाय की खेती छाती भर ऊँचाई के चायपत्ती के पौधे लगे थे। महिलाएँ बोको पीठ पर लाद कर चायपत्ती तोड़ रही थीं। काली बाबू ने स्पष्ट किया- “हाल में ही ग्रीन-टी का नया किस्म आया है। वैसे इसकी खेती अधिक नहीं हुई है परन्तु दुनिया के बाजार में इसकी मांग बहुत अधिक है। कीमत भी सबसे अधिक।”

कुछ और आगे बढ़ने पर रबड़ के पेड़ दिखलाई दिये। सभी पंक्तिवद्ध लगाये गये थे। पेड़ो के आकार से लग रहा था कि पन्द्रह-बीस वर्ष के है। बहुत विशाल नहीं। छाती भर ऊपर से खुदा हुआ, जिसकी जड़ों से लासा या दूध निकल रहा था, प्रत्येक दिन प्रात: काल उस दूध को एकत्र कर उससे रबड़ बनाया जाता था।

दोनों लगभग बारह बजे बुढ़ी काली स्थान पहुँचे। छोटा सा स्थान दुकानदारी भी छोटी। एक सौ वर्षों का मन्दिर लग रहा था। सुरखी-चूना से जुड़ा हुआ मन्दिर टूटकर और झर-झर कर जर्जर बन गया था। दोनों ने मूर्ति देखी, पुरानीकला पर आधारित मूर्ति थी।

जगदीश प्रसाद मण्डल मन्दिर से बाहर आ गये परन्तु काली बाबू को बहुत मंत्र पढ़ना था। इसीलिए वे मन्दिर में ही रह गए थे। जगदीश बाबू मन्दिर से बाहर आकर पेड़ों पर नजर डालें। मन्दिर के प्रांगण में आम, कटहल, गम्हार, शीशम, जामुन आदि के पेड़ लगे थे। अभी तक वे गुवाहाटी के बाद ऐसे पंचमेल पेड़ कभी नहीं देख पाये थे। इसलिए कुछ बात मन में उठी। अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मिथिला के ही किसी पुजारी ने इन पेड़ों को लगाया होगा। जगदीश बाबू मन्दिर के पुजारी से बातचीत करने लगे तभी काली बाबू मन्दिर से निकलते ही कहा- “कहा जो था कि कमल सागर देखेंगे, वह यही है।”

जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने उस कमल सागर का अवलोकन किया। उन्हें ऐसा लगा कि यह बेरमा के बड़की पोखर से छोटा ही है। काली बाबू भी बेरमा के बड़की पोखर से परिचित। उसमें भी बेरमा के बड़की पोखर और कछुबी के बड़की पोखर- दैत्यों द्वारा खुदा हुआ पोखरों की तुलना दोनों गाँवों के लोग करते ही रहते हैं जिसमें बेरमा के ही बड़की पोखर बीस। उन्होंने काली बाबू से पूछा- “इसका नाम सागर क्यों पड़ा?”

भूगोल का छात्र रहते हुए भी काली बाबू निरुत्तर हो गये। तभी चटगाँव वाली रेल गाड़ी पास हुई। जगदीश बाबू ने विदा होने से पहले मिठाई खायी और चाय पी। वैसे काली बाबू मधुमेह रोग से ग्रसित थे, फिर भी प्रसाद मानकर उन्होंने भी मिठाई खा ली। वहाँ से दोनों दिन रहते ही वापस आ गये।

काली बाबू के परिवार वैष्णव बन गये थे। समस्त परिवार शुद्ध शाकाहारी। मणिपुरी पड़ोसी का कहना था कि काली बाबू चार बजे सुबह से ही नाच-नाच कर भजन करने लगते; व्यायाम भी बहुत अधिक किया करते हैं।

वह मणिपुरी मांस-प्रिय लोग था। वैसे वह मिथिलांचल जैसा लम्बे कद

का था, परन्तु उसकी पत्नी पहाड़ी जैसी छोटे कद की थी। दुर्गा पूजा का समय था ही। बगल में ही पूजा हो रही थी; अपने-अपने परिवार के साथ सभी अफसर देख रहे थे। अपने यहाँ जैसा वहाँ दस दिनों की पूजा नहीं। सातवें दिन से पूजा शुरू होती थी। काली बाबू ने कहा कि 'काली पूजा' त्रिपुरा में और बंगलादेश में भी होती है। असम से उत्तर-पूरब से लेकर दक्षिण तक मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड राज्य हैं। रेल मार्ग कुछ ही दूर तक है। यहाँ की मुख्य सवारी बस-ट्रक है। जंगल-पहाड़ से सघन ईलाका है; हजारों किस्मों के पेड़ और खानेवाले फलों से आच्छादित क्षेत्र, जहाँ बाध-वन की घासों जैसा साग-पात-सब्जी।

काली बाबू ने आने का आमंत्रण करते समय ही कह दिया था कि अपने यहाँ से वहाँ जो-जो भिन्न होगा उसे देखेंगे भी और चिह्नांकित भी करेंगे तथा खानेवाली वस्तुओं को, स्वादिष्ट फलों को खायेंगे भी।

त्रिपुरा में अपने यहाँ से अधिक वर्षा होती है। धान उपजाया जाता है जिसकी कटनी पानी में ही होती है, मतलब खेतों में पानी रहता ही है तथा धान की किस्म भी अनुकूल। त्रिपुरा के साठ-सत्तर प्रतिशत जमीन जंगल, झाड़ी और पहाडों से भरी-पड़ी है केवल तीस-चालीस प्रतिशत ही उपजाऊ भूमि है। बिहार की तरह वहाँ की मुख्य फसल धान है। फिर भी विकास में त्रिपुरा बहुत पीछे रह गया है। त्रिपुरा के आदिवासी समुदाय महंगाई के भार तले दबे हुए हैं। शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। कारण भी है कि विदेशी संस्थाओं ने शिक्षा का ढंग ऐसा बना दिया है, लोगों की समझ को ऐसा कुण्ठित कर दिया है कि वहाँ रेलवे का विकास न हो सके- उल्टी शिक्षा- संदेश। पुन: काली बाबू ने कहा कि ऐसी बात जरूर है कि यहाँ रेलवे लाईन बिछाना आसान नहीं है और पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण व्यय भी अधिक लगेगा। राजनैतिक दृष्टिकोण से अपने यहाँ भी ऐसे राजनीति दल हैं जो सड़क, नहर और पुलों के निर्माण मशीनों से नहीं लोगों से करवाने के पक्ष में रहते हैं, मगर उसे उचित-अनुचित देखकर फैसला लेना चाहिए। पशुपालन भी वहाँ नहीं के बराबर है लेकिन वहाँ के जंगलों में ऐसे-ऐसे पशु हैं जिसका मूल्य अपने यहाँ की गाय-भैंस के मूल्य से अधिक है।

उसी तरह पेड़-पौंधे भी भिन्न तरह के है। सुन्दर वन के इलाके में हजार की क्या बात, लाख की क्या बात करोड़ो-करोड़ मूल्य के वृक्ष है। बाँस की तो चर्चा ही नहीं। खिस्सा है "फलाने खलिफा बाँस उखाड़कर दँतमन करता था।" उक्ति यह चरितार्थ होती है, क्योंकि वैसी बाँस वहाँ प्रमाणित है। मिथिलांचल की बाँस की कड़ची जैसा वहाँ बाँस होती है। एक बाँस को काटकर दँतमन भी किया। इसका मतलब यह नहीं होता है कि वहाँ ऐसी ही बाँस होती है। बाँसों के ऐसे-ऐसे किस्म भी है जो मिथिलांचल की बाँसों से डेढ़ गुना-दो-गुना मोटी है।

बिना मिट्टी की खेती जो पहाड़ पर होती है उसे झूम खेती या 'झूम सिस्टम' कहते हैं। छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाकर उसमें उगे घास-पात, वन-झाड़ी एवम् कटिले पौधों में आग लगाकर और जलाकर खेती की जाती है। तीन साल पर पुन: खेती, कृषि-चक्र की तरह होती है।

बंगलादेश बहुत गरीब देश है। कारण भी है, 1947 ईस्वी से पूर्व भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश अखण्ड भारत था। परन्तु आजादी के बाद बँटवारे के कारण पाकिस्तान और इसके साथ बंगलादेश भारत से अलग हो गये। सत्ता पाकिस्तान के हाथ आई, क्योंकि बंगलादेश कमजोर था। बंगला-देश पीछे रह गया। वह असुविधा, शोषण और अपमान का शिकार बनता रहा परन्तु चालाक पाकिस्तान उसका शिकार करता रहा, लाभ उठाता रहा, फलस्वरूप बंगलादेश ने शोषित-पीड़ित और अपमानित होकर पाकिस्तान से स्वतंत्र होने की लड़ाई छेड़ दी और 1971 ईस्वी में पाकिस्तान से अलग हो गया, परन्तु तबतक बहुत देर हो चुकी थी। दूसरा कारण समुद्री क्षेत्र होने के कारण समुद्री तूफानों से बर्बादियाँ और तीसरा कारण, शासन की प्रतिकूलता में जन जीवन।

त्रिपुरा की आर्थिक स्थिति उतनी सुदृढ़ नहीं है फिर भी सरकारी अनुदान भरपूर मिलता है। वैसे तो उद्योग-धन्धा छोटे पैमाने पर चलता ही है। जूट के कारखाने के साथ बाँस का उद्योग भी। बाँस के उद्योग से बाँस का वेंत, जो छाता में लगाया जाता है या सुन्दर-सुन्दर बाँस का डंडा तथा बाँस की अद्भूत रंग-बिरंग की वस्तुएँ भी। वहाँ एल्मुनियम फैक्ट्री से एल्मुनियम के बर्त्तन आदि भी बनते हैं। बंगलादेश के हजारों लोग रिक्शा चलाते हैं और मजदूरी भी करते

हैं। बीजा या पासपोर्ट की व्यवस्था नहीं रहने के कारण बंगलादेशी मजदूर सुबह में आते हैं और काम करके शाम को लौट जाते हैं।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी जब सीमा की चौकी देखने गये तो वहाँ मध्य प्रदेश का सिपाही ड्यूटी में था। वह हिन्दी जानता था, इसलिए उससे हिन्दी में बात-चीत हुई। उसने कहा- “ये बंगलादेशी मजदूर सुबह 6 बजे से 8 बजे तक प्रवेश करते हैं, सभी की गिनती कर लेता हूँ और शाम में 5 बजे से 7 बजे तक वापस चलै जाते हैं, गिनती फिर मिला लेता हूँ।”

भाषा की दृष्टि से त्रिपुरा में अंग्रेजी, बंगला, ककवार्क और मणिपुरी का प्रचलन है।

जगदीश बाबू 1998 ईस्वी में त्रिपुरा गये थे। उस समय काली बाबू डी.आई.जी. (होमगार्ड) थे। जगदीश बाबू को यहाँ चार दिन बीते थे कि काली बाबू की बदली हो गई। उन्हें डी.आई.जी. (प्रशासन) बनाकर उत्तरी त्रिपुरा भेज दिया गया। पाँचवें दिन काली बाबू सपरिवार और जगदीश बाबू भी ‘कैला पहाड़’ देखने के लिए विदा हुए। दस बजे छह फोर्सों के साथ सभी विदा हुए थे।

‘अगरतला’ पश्चिमी त्रिपुरा में पड़ता है, बंगलादेश से सटा हुआ और शान्त क्षेत्र परन्तु दक्षिणी त्रिपुरा में उग्रवादी-उपद्रव अधिक है। इसी कारण अधिक नहीं घूम पाये। वैसे अधिकांश सफर रात में ही किया गया था। मगर अगरतला से ‘कैला शहर’ आने में देखने का अधिक समय मिला। क्योंकि दस बजे दिन में अगरतला से चले थे और साढ़े चार बजे अपराह्न में ‘कैला शहर’ पहुँचे थे। रास्ते में तीन जगहों पर पन्द्रह-बीस मिनट करके रूके भी थे। नये स्थान को लेकर सभी नये ही थे, वहीं काली बाबू का स्थानान्तरण हुआ था। दो दिनों तक घूमने-फिरने का कोई कार्यक्रम नहीं बना। तीसरे दिन से फिर घूमना-फिरना शुरू हुआ। आश्विन महीना रहने के कारण खेतों में धान लगे थे और ऊँची जमीन में आलू और तेलहन की तैयारी चल रही थी। पेड़-वृक्ष भी थे, परन्तु आम के पेड़ मिथिलांचल के आम से भिन्न किस्म के। वहाँ का आम पकने पर नहीं खाया जाता है, क्योंकि पकते ही उसमें कीड़ा उत्पन्न होने लग

जाता है, जो आम को दूषित तथा संक्रमित कर देता है।

त्रिपुरा के प्रसिद्ध स्थानों में उनीकुटी भी एक है। अब उनीकुटी का कार्यक्रम बना। उनीकुटी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब द्वापर युग का अन्त होने लगा और कलयुग का प्रवेश होने लगा था तो देवताओं ने सोचा कि बहुत खराब युग आ रहा है। इसमें मान-मर्यादा, इज्जत-आबरू, वैभव आदि बचाना कठिन है। इसलिए धरती छोड़कर समुद्र में वास करना ही ठीक होगा। 'उन' का अर्थ 'एक' होता है। जैसे हमलोग उनचालीस, उन्नीस, उनतीस, उनहत्तर आदि कहते हैं, जिसका अर्थ क्रमश: चालीस में एक कम, बीस में एक कम, तीस में एक कम, सत्तर में एक कम आदि होता है, वैसे ही उनकुटी का अर्थ हजार में एक कम- कुटी- कोटि- हजार।

स्थान का नाम सुनकर जगदीश बाबू के मन में अत्यधिक खुशी हुई। खुशी का कारण भी था कि काली बाबू इस तरह नाच-नाचकर कथा सुनाते थे कि जिज्ञासा और बढ़ गई थी। उस पर से भी अभी तक चौरासी लाख देवताओं की चर्चा सुनी थी, मगर आज करोड़ देवताओं को देखने का, जानने का मौका जो मिलने वाला था। सभी देवता आपस में विचार-विमर्श कर रातो-रात समुद्र की ओर चल दिये। सभी पैदल थे। जाते-जाते जब त्रिपुरा के उनीकुटी माताहारी पहुँचे तो सुबह हो गया। भैंसवार सब भैंस खोलकर भैंस चराने के लिए ले जा रहे थे। सभी देवताओं ने आगे दिन का अहसास कर एक ही जगह एकत्रित होकर कुटी बना ली। समुद्र में छिपने से पहले का वह डेरा था- डेरा डालना। डेरा का पर्यायवाची शब्द कुटी होता है, वही स्थान उनीकुटी है- देवताओं की कुटी या हजार में एक कम देवताओं की कुटी- उनकुटी।

विस्तृत क्षेत्र में फैला वह स्थान अवस्थित है- ऊँचा-ऊँचा पहाड़, पेड़-पौधे, वन-झाड़ी एवम् लताओं की मनोहर झाँकियाँ दिखती हैं। मनुष्य से पूर्व के जो जीव-जन्तुएँ हैं, वे ही देवी-देवता के रूप में मान्य हैं। पहाड़ी भूमि परन्तु रंग-बिरंग के पत्थरों का क्षेत्र, जैसे बाल पत्थर, कांच पत्थर, जवान पत्थर आदि हैं। वैसे भी पत्थर मिलते हैं, जो हाथ से भी टूट जाते हैं। खाने वाले फलों और

केलों के भी वन-बगीचे हैं। बीच-बीच में दुकानदारी भी चलती है। जिस स्थान पर झरना का पानी गिरता है, वहाँ द्वापर युग के अर्जुन-कृष्ण के रथ का मनोरम चित्र बना हुआ है जो उनीकुटी का मुख्य आकर्षण केन्द्र-बिन्दु है।

पूर्वांचल (असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड और सिक्किम) एक साथ मिलकर अपने-आप में एक देश है। जंगल, पहाड़, झील, नदी-घाटियों का अनुपम संगम या समूह। परन्तु भाषा के के दृष्टिकोण से बहुभाषी क्षेत्र है। बंगला, अंगरेजी, हिन्दी, खासी, गारो, ककवार्क, मणिपुरी, मिजो, आओ, कोंयक, अंगामी, सेमा, लोथा, मोंपा, अका मिजू, शर्दुकमेन, निशि, अपतनी, हिलमिदि, तगिन, अदी, इदु, दिगारू, मिजिखम्री, सिंगफू, तंगला, नोक्टे, वांचू, लोपचा, भोटिया, नेपाली लिंबू इत्यादि।

अगरतला के राजा (सामंती युग में) वर्म्मन परिवार के थे। फिल्मी गीतकार-संगीतकार सभी वर्मन वही के हैं। त्रिपुरा के सभा भवन उन्हीं राज परिवार की देन है।

आदिवासियों के बीच भोजन का प्रचलन और खाने-पीने का ढंग भी भिन्न है। अपने यहाँ की रीति में जहाँ भोज में अच्छी वस्तुएँ अन्त में बाँटी जाती है वहाँ अच्छी वस्तुएँ ही शुरू में बाँटी जाती है।

दो हजार ईस्वी के बाद अर्थात् जगदीश प्रसाद मण्डल जी के अगरतला आने-जाने के दो वर्षों के बाद काली बाबू रोगग्रस्त होने लगे। कलकत्ता में ऑपरेशन करवाया, कब्जियत की शिकायत के साथ मधुमेह से भी पीड़ित थे, परन्तु आई.जी. बनने के बाद कुछ दिनों तक ठीक रहे थे। वैसे बीच में डी.जी.पी. बनकर मेघालय (शिलाँग) भी गये परन्तु वहाँ मन नहीं लगा और छह महीने के बाद आई.जी. बनकर पुन: अगरतला आ गये। रिटायर होने से चार वर्ष पहले ही सख्त बीमार पड़ गये। और बिछावन पकड़ लिये। दिल्ली, कलकत्ता अन्य जगह जाकर ईलाज करवाये परन्तु ठीक नहीं हुए। देह का कोई ठीक नहीं रहा। तीन या चार बार पेट का ऑपरेशन हुआ था। दु:ख-कष्ट और चिन्ता से चिड़-चिड़ा बन गये। जब रिटायर होने में दो वर्ष शेष रह गये तो अपने

गाँव कछुबी आ गये। तबतक वे शारीरिक रोग से ही नहीं, मानसिक रोग से भी ग्रसित हो चुके थे। मानसिक रोग का कारण भी था। जब वे आई.जी. बने थे तो गृह विभाग ने बिना योजना के ही 32 करोड़ रूपये उन्हें भेज दिये, परन्तु वे सैद्धान्तिक लोग थे। इसलिए विभाग की इस मंसा को समझ नहीं पाए कि रूपया कहाँ-कहाँ व्यय करना है।

उन्होंने विभाग को पत्र लिखा कि रूपया तो प्राप्त हो गया परन्तु योजना तो है ही नहीं, योजना भेजने की कृपा की जाय। पत्र तो भेज दिया लेकिन कोई उत्तर नहीं आया। उन्होंने रूपये लौटा दिये। परन्तु रूपये लौटाना महंगा पड़ गया। वे विभाग के आदेश के उलंघन के जाल में फँस गये, जो एक बुना हुआ षड्यंत्र था। उनपर शो-कॉज नोटिस आ गया। जवाब-तलब भी हुआ। रोगग्रस्त होने के कारण कार्यालय का चक्कर लगाना उनके लिए असम्भव बन गया था। वे ससपेंड भी हो गये। विभाग के दबाव और ड्यूटी से अलग हो जाने से आर्थिक समस्या भी आ गई। उस पर से पथ्य-पानी, दवा-दारू का खर्च, वे बेवश हो गये थे।

काली बाबू पण्डित भी कहलाते थे, जिसका कारण गीता पर (श्रीमद्भागवत गीता) उनकी अच्छी पकड़ थी, अपनी अलग शैली थी और उन्होंने आचार्य रजनीश के आठों खण्डों पर विजय पा ली थी।

काली बाबू की जिन्दगी की आशा टूट गई। अन्तिम दौड़ में विभाग ने भी बहुत कुछ कहा कि दिखावा क्या है और उनकी चोरी क्या है। उन्होंने अपने साथी जगदीश प्रसाद मण्डल के सामने नौकरी से लेकर शुरू, मध्य और अन्तिम बातों को साझा किया था। वे इतने ईमानदार थे कि उनके काम से खुश होकर लोग रूपया, कपड़ा, गहना तथा अन्न-अनाज लेकर उनके पास आता था, परन्तु वे रूपये, गहने, कपड़े छुते तक भी नहीं थे, अधिक से अधिक अन्न-अनाज रख लेते थे। जगदीश बाबू की नजर में वे एक सख्त ईमानदार और नेक इंसान थे; अफसर से अधिक इंसान थे।

बंगलादेश की 1971 ई. की लड़ाई में भारत ने बंगलादेश का साथ

दिया था। इन्दिरा जी प्रधानमंत्री थी। उन्हें रूस से भरपूर सहयोग मिला। उस समय सोवियत संघ बहुत शक्तिशाली देश था, वैसे अभी भी है, परन्तु भारत और रूस के बीच दोस्ती और बीस वर्षों की समझौता थी। अमेरिका पाकिस्तान का साथ दे रहा था। लड़ाई ने ऐसा रूप लिया कि 31 हजार सैनिकों ने सरेण्डार कर दिया। पाकिस्तान के साथ अमेरिका चारोखाने चीत, मगर भारत के साथ बंगलादेश की जीत। बंगलादेश की उस लड़ाई में जो शीर्ष नेता थे, वे सभी त्रिपुरा-अगरतला में रहते थे। इन्दिरा जी भी वहाँ आया-जाया करती थी। त्रिपुरा मिलेट्री की छावनी बनी रही। उस समय लड़ाई का कमान मिलेट्री के हाथों में था। सुरक्षा के लिए उस गेस्ट हाउस की रखवाली की जिम्मेदारी काली बाबू के ही पास थी।

बंगलादेश की लड़ाई से पहले उन्होंने गलती करने पर एक जिम्मेदार अध्यक्ष को गाली ही नहीं दी थी, पीटा भी था। कारण, वह बंगाली था और इनके नाम पर मछली-व्यापारी से ठग-ठग कर मछली खाता था। एक दिन पकड़ा गया, परन्तु लूट में चरखा नफा। त्रिपुरा में कम्युनिस्ट पार्टी और कॉंग्रेस पार्टी में कशमकश राजनीति थी। तीन सदस्यों की एक समिति नृपेन बाबू- नृपेन चक्रवर्ती- की अध्यक्षता में बनी थी। नृपेन बाबू आजन्म अविवाहित व ट्रिपल एम.ए. दो बार मुख्यमंत्री भी रह चुके थे और कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व कर रहे थे। काली बाबू भी कम नहीं। बचपन से ही संघर्ष करने की क्षमता थी उनमें। उनके स्वाभिमानी पर उनके साथी अकसर कहा करते थे कि ‘मोटा- बोझ बाँधकर रखे रहो’। इसका जवाब में काली बाबू कहते थे- ‘बँधा हुआ है’।

नृपेन बाबू घटना की जड़ तक पहुँचे। उन्हें जँगल के एक गेस्ट रूम में ले गये। रात भर वहीं रह गये, जिससे उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ गई थी। काली बाबू पाँच भाई थे और उन्हें चार संताने भी थी- तीन बेटियाँ और एक बेटा। सभी बेटियों की शादी कर दी थी। भाई और पिताजी जीवित और स्वस्थ थे। आगे पिताजी के स्वर्ग सिधारने के एक वर्ष बाद वे भी मर गये। मरने से पहले बेटा का विवाह करना चाहा। सुपौल जिला में विवाह की चर्चा चल रही थी। बेटी के पिता रेलवे के एस.पी. थे। जब उन्होंने समझा कि अब नहीं बचूँगा तो मन्दिर में

जाकर उनकी बेटी के साथ अपने बेटे का विवाह करवा दिया। नौकरी समाप्ति के पन्द्रह-बीस दिनों के बाद वे मर गये, परन्तु पेंशन की समस्या तो उठ ही गई।

साहित्यिक-राजनैतिक संगोष्ठी में...

जगदीश प्रसाद मण्डल जी त्रिपुरा जाने से पहले हैदराबाद गये थे वहाँ चार दिनों का राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक-राजनैतिक संगोष्ठी थी। ग्रुप में वे मधुबनी जिला से गये थे। एक महीना का पास सभी बनाये थे। उस समय मधुबनी जिला की पार्टी के अन्तर्गत स्व. अनन्त भगत साहित्यिक मोर्चा पर थे। यद्यपि वे निर्धन और अधिक समस्या से गुजरते थे फिर भी पार्टी के नियमित, वफादार सिपाही थे। उन पर ही मधेपुर का भार था।

साहित्यिक मंच पर 'प्रेमचन्द साहित्य' और राजनीतिक मंच पर 'देश में कानून बनाना, व्याख्या करना और निर्णय लेने में क्या समस्या आती है' उस पर विषद चर्चा की संगोष्ठी थी। प्रेमचन्द साहित्य पर रमेशचन्द्र ने विषद व्याख्या उद्घाटन भाषण में ही की। वैसे वे पंजाबी थे और अंग्रेजी भाषा में बोले थे। दक्षिणी भारत में अंग्रेजी भाषा का बोलवाला अधिक और कार्यक्रम भी दक्षिणी भारत में। एक मत से सभी ने प्रेमचन्द्र जी को प्रगतिशील विचार के साहित्यकार मान लिया। राजनीतिक मंच पर मुख्य वक्ता 'भूपेश गुप्त' थे, जिन्होंने राज्य सभा की बैठक में एक सौ से अधिक बार भाग लिया था। उनहोंने कानून बनाने की प्रक्रिया में क्या वाधा होती है, उस पर विषद व्याख्यान प्रस्तुत की और कार्य किस तरह से किया जाय, इस पर भी सुझाव देते हुए अपना उद्गार व्यक्त किया।

भूपेश गुप्त बंगाली थे और बाल ब्रह्मचारी थे। उन्होंने इन्दिरा जी (पी.एम. भारत), स्व. ज्योति बाबू- ज्योति बसु, मुख्यमंत्री, बंगाल के साथ इंग्लैंड में कानून की शिक्षा ली थी। दूसरा मुख्य वक्ता न्यायमूर्ति वी.आर. अय्यर (सर्वोच्च न्यायालय से सेवा निवृत जज) थे। समस्या का निर्णय करना

कठिन है, उस पर विषद भाषण दिया, ये वही अय्यर साहेब थे जो महामाया बाबू (मुख्यमंत्री, बिहार) के समय अय्यर आयोग के अध्यक्ष थे। तीसरा मुख्य वक्ता थे- मध्य प्रदेश हाईकोर्ट का एक सिनियर अधिवक्ता, उन्होंने न्यायालय में बहस करने की कला पर विषद चर्चा की।

स्वभाव में भी दक्षिण भारत के लोग भिन्न है, वे लोग दिल खोलकर काम करने में विश्वास रखते हैं। जगदीश प्रसाद मण्डल जी को कुछ ग्रामीण क्षेत्रों को देखने की इच्छा थी। जो नहीं हुआ। गाड़ी से जो देखा था वह मन के अनुकूल नहीं था। फिर भी हैदराबाद जैसे बड़े शहर में जो-जो मुख्य दार्शनीय स्थान थे, उन्हें तो देख ही लिया। जैसे उषा कम्पनी, संगमरमर का पहाड़, चारमीनार, नियामक राजशाही भवन, झील इत्यादि का अवलोकन किया। हैदराबाद काफी व्यस्त शहर है, वहाँ गाड़ी-सवारी की पर्याप्त व्यवस्था है। फिर भी भीड़ लगी रहती है। खाने-पीने का ढंग भिन्न था, कटहल का विन्यास अपने यहाँ से भिन्न परन्तु अच्छा था। वापसी समय ऐसी हड़बड़ी हुई कि स्टेशन पहुँचते-पहुँचते गाड़ी खुल गई। मधुबनी के सभी लोग छिन्न-भिन्न हो गये, मगर किसी तरह गाड़ी में चढ़ गये थे। अगले स्टेशन पर सभी उतर कर एक महिला बॉगी में चढ़ गये। जगदीश बाबू महिला बॉगी में इससे पहले कभी नहीं बैठे थे। निरीक्षण किया तो देखा कि बॉगी में महिला ही महिला है, टी.टी. भी महिला। मगर अपने यहाँ जैसा महिला पुरुषों को देखकर खों-खों नहीं किया। जगदीश बाबू महिलाओं की तरफ ताक-झाँक कर रहे थे कि कोई कुछ पूछेगी तभी न जवाब दूँगा। वे सभी चुपचाप देख रही थीं और हँस भी रही थीं। जगदीश बाबू को कोई चिन्ता नहीं थी। एक ही देश की रेलगाड़ी में दो तरह की रीतियाँ उसे कचोट रही थीं, तब क्या होगा?

कुछ देर के बाद टी.टी. उनके पास आयी, वह समझती थी कि यह उत्तर भारत की मेल गाड़ी है। उसने जगदीश प्रसाद मण्डल जी से कहा कि यह लेडी कम्पार्टमेन्ट है, वैसे उसने हिन्दी में ही कहा परन्तु यहाँ के मिडिल स्कूल के बच्चे जिस तरह हिन्दी बोलता है, उसी तरह बोली। परिचय जरूरी समझकर जगदीश

बाबू ने यात्रा की चर्चा की और कहा कि हड़बड़ी में इस बोगी में चढ़ गये, नहीं तो क्यों चढ़ते, आगे बदल लेंगे, साथी सब भी हैं।

रामपट्टी का जेल...

रामपट्टी (मधुबनी) का जेल बन गया था, परन्तु उद्घाटन नहीं हुआ था। जेल में ठेलम-ठेल, रेलम-रेल, मधुबनी चक्की वार्ड में जो दस-बीस दिन तक रहा होगा उसे परेशानी याद ही होगी, उस जगह एक साल की क्या बात कई सालों तक कई लोग वहाँ रहे थे। आजादी से पूर्व और पश्चात् मधुबनी जेल.... इसमें एक सुविधा या असुविधा जरूर थी कि जेल के भीतर विभाजन था, वार्ड-02 राजनीति पार्टी सब के लिए बाँकी गैर राजनीतिकों के लिए अथवा सामान्य लोगों के लिए। इसका मतलब हुआ कि न तो अपराध एक जैसा होता है और न हीं अपराधी, महाधीश से लेकर फूल तोड़ने वाले भी जेल में रहते हैं। जेल में भी चोरी होती है- बादाम की चोरी, गुड़ की चोरी तो तेल की हेरा-फेरी, किस्म-किस्म की चोरी...।

रामपट्टी जेल का उद्घाटन नहीं होने का कारण था कि प्रशासन से लेकर ठेकेदार तक फाइनल करने को तैयार नहीं थे। कुछ कार्य पीछे हो गये थे तो कुछ बिल भुगतान बाँकी था, मगर सब की नजर योजना खाने पर टिकी हुई थी।

राज्य वामपंथी (भाकपा-माकपा) पार्टी ने अपनी ज्वलंत समस्या लेकर जेल भरो आन्दोलन किया, वैसे समूचे राज्य की अनेक ज्वलंत मुद्दा थे परन्तु मिथिलांचल के दो ही प्रमुख मुद्दा थे- कोसी नहर के साथ नुनथर शीशा पानी और बराहक्षेत्र में बाँध बनाकर पनबिजली का उत्पादन किया जाय, जिससे कृषि के साथ उद्योग धन्धा भी बढ़ेगें। कुछ लोगों की धारणा है कि खान क्षेत्रों में ही कारखाने की जरूरत है, मगर ऐसी बात नहीं है। ऐसा भी होता है कि कारखाने को जहाँ 55 प्रतिशत कच्चा माल खानों से प्राप्त होता है, वहाँ 45 प्रतिशत कृषि क्षेत्रों से उत्पादित वस्तुओं से भी प्राप्त करना पड़ता है।

दूसरा मुद्दा था- मैथिली भाषा को सरकारी मान्यता दिलाना अथवा अष्टम् अनुसूचि में मैथिली को दर्ज कराना, जिससे मिथिलांचल का विकास हो सके।

वैसे तो मैथिली भाषा को समुचित अधिकार के लिए मैथिली प्रेमियों ने अपना-अपना बहुमूल्य योगदान दिया है, परन्तु एस.डी.ओ. ग्रियर्सन जो अंग्रेज थे तथा मैथिली प्रेमी थे, उसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने गाँव-गाँव घुमकर भाषाओं की जानकारी ली, जिससे मैथिली मजबूत होती गई और मिथिलांचल की रूपरेखा भी तैयार हुई। इनके द्वारा लिखी पुस्तके बड़े-बड़े पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रही है, और जेबर गहनों की तरह आलमारियों को रत्नमय कर रही है।

मधुबनी जिला बढ़-चढ़ कर आन्दोलन में भाग लिया। दर्जन से अधिक वकील और हजार से अधिक कार्यकर्त्ताएँ जेल में थे। एक ही दिन मधेपुर-लखनौर प्रखण्ड और बिस्फी प्रखण्ड का अभियान था।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी तथा अन्य सहयोगी जिला कार्यालय के गेट के बाहर थे, पूर्वे जी (स्व. राजकुमार पूर्वे) कार्यालय के पिछले गेट से आकर पीछे में खड़े एस.पी. का कालर पकड़ लिया, फलस्वरूप भीतर और बाहर भगदड़ मच गया। लाठी चार्य भी हुई परन्तु कम हुई।

जगदीश प्रसाद मण्डल रामपट्टी जेल पहुँचे, बेरमा के अट्ठारह लोग भी उनके साथ थे। नागेन्द्र जी (डॉ. नागेन्द्र कुमार झा, पैटघाट) और जगदीश प्रसाद मण्डल ये सभी लोग लेडी वार्ड के बरामदे पर थे। जिला के सभी विधायक और विधान पार्षद भी थे। विधायक के रूप में पूर्वे जी (स्व. राजकुमार पूर्वे), तेज नारायण जी (श्री तेज नारायण झा), लाल बिहारी जी (श्री लाल बिहारी यादव), रमण जी (श्री राम लखन राम रमण, विधायक) वैद्यनाथ जी (श्री वैद्यनाथ यादव, पूर्व विधायक) और चौधरी जी (श्री कृष्णचन्द्र चौधरी) आदि थे।

जेल के अन्दर दिन में दो बार भाषण-भूषण चलता था। मुख्य वक्ता थे

चौधरी जी। सुयोग्य और कुशल विद्वान श्री कृष्णचन्द्र चौधरी जी थे। भाषा पर उनकी ऐसी पकड़ थी कि एक शब्द कम या अधिक नहीं होने देते, व्याख्या करने की उनमें अद्भूत क्षमता थी। वे पार्टी के जनशक्ति, दैनिक पत्रिका के सम्पादक थे और जगदीश प्रसाद मण्डल जी उसी पत्रिका का सम्वाददाता थे।

स्व. कृष्णचन्द्र चौधरी कुशल वक्ता के साथ अच्छा लिखते भी थे। मैथिली में तो नहीं परन्तु हिन्दी-अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखी हैं। जैसे वे विद्वान थे वैसे ही सुभ्यस्त परिवार के भी थे, पान खूब खाते थे और सिगरेट भी पीते थे। सुबह में चाय पीकर पान खाते थे। वे खाली हाथ ही जेल आ गये थे, परन्तु उनके एक कर्मठ सहयोगी भी जेल में थे, जो थे कम्युनिस्ट पार्टी के वफादार सिपाही- जगदीश प्र. मण्डल, जो समय-समय पर उन्हें पान खिलाया करते थे।

जेल भी कोई जेल जैसा नहीं था। न तो पर्याप्त सरकारी कर्मचारी थे और न हीं कोई सरकारी व्यवस्था। जेल का फाटक भी खुला ही रहता था। प्रदर्शनकारी बाहर-भीतर टहलते रहते थे। दोपहर में ढोलक पर आल्हा का गायन होता था-

“8 बरस तो कुकुर जिये, बारह बरस जिये सियार
बरस 18 क्षत्रिय जिये, आगे जीवन को धिक्कार..।”

वैसे बिहार के कई जिलों के प्रदर्शनकारी दो दिनों के बाद जेल से निकलने लगे मगर मधुबनी में मार-पीट के कारण वैसा नहीं हुआ। दो दिनों के बाद भोगेन्द्र जी (नेता भोगेन्द्र झा) भी दरभंगा जेल से मधुबनी जेल आ गये।

तेरह दिनों के बाद जेल से निकलने का आदेश आया, मगर सबके लिए नहीं। 35 लोगों को मुजफ्फरपुर जेल भेजने का आदेश भी आया। जेल से कोई बाहर निकलने के लिए तैयार नहीं हुआ। जेल में विदाई की चर्चा होने लगी और धोती-कुर्त्ता, गंजी, गमछा और चादर की माँग शुरू हुई। अन्त में एक-एक लुंगी और एक-एक गमछा सबको मिले। यह पार्टी आन्दोलन की अन्तिम जेल-यात्रा थी।

वैसे जगदीश प्रसाद मण्डल और अन्य साथी दोहरी जेल के यात्री थे।

गाँव-समाज के हित या विकास के लिए तथा गाँव के असहायों के लिए लड़ते थे और उनके लिए जेल की यात्रा भी करते थे, जो जगदीश प्रसाद मण्डल की उदारता की पहचान थी।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी से पूर्णिया, शकुन्तला-भुवनेश्वरी मैथिली-संस्कृत हैदरावाद स्थान- जगन्नाथपुर (चम्पानगर), पूर्णिया की यात्रा के क्रम में मैंने जब उनसे जिज्ञासा की और पूछा- "सर, कहाँ आपका उत्तम सद्विचार और कहाँ जेल की कोठरी, मुझे तो पच नहीं रहा, फिर जेल-यात्रा क्यों?"

जगदीश बाबू ने मेरी जिज्ञासा शान्त करते हुए अपना उद्गार व्यक्त किया- "मैं अपने लिए नहीं, दूसरों की भलाई के लिए, समाज-हित में जेल-यात्रा करता रहा, 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।" मैंने समझा कि महान उपकारी लोग महान त्यागी भी होते हैं, अस्तु मैंने उन्हें साधुवाद दिया।

जिस प्रकार बाढ़ का पानी किसी पोखरे में प्रवेश करते समय उस पोखरे का पानी गतिशील हो उठता है और वापसी के समय धीरे-धीरे गतिहीन होता जाता है, उसी प्रकार केस-मुकदमे की भी दौड़ होती है। जगदीश बाबू भी स्थिर हो चुके थे। अब उनके मन में देश देखने की ईच्छा जागृत हो चुकी थी।

2000 ईस्वी से पूर्व तक जगदीश प्रसाद मण्डल मण्डल जी देश के आधी से अधिक भागों का भ्रमण कर चुके थे। एक तरफ देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई देख चुके थे तो दूसरी तरफ नागालैंड- अरुणाचल प्रदेश भी देख चुके थे। गरुदेव महर्षि रविन्द्र नाथ टैगोर के शान्ति-निकेतन के साथ सुन्दर वन, गंगासागर समुद्र के किनारे कबीर दास की गड़ी खन्ती और सूर्य-मन्दिर भी देख चुके थे।

शान्ति-निकेतन में कुछ विभूतियों के क्रियाकलापों का भी अध्ययन किया था। महान रचनाकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी शान्ति-निकेतन में 1930 ईस्वी से 1950 ईस्वी तक हिन्दी के प्राध्यापक रहें, जो सिरीस के फूल की महक से मुग्ध होते रहें, जबकि मिथिलांचल में सिरीस वर्जित है, क्योंकि

इसकी लकड़ी से न तो चौकी बनती है, न कुर्सी, न बेंच-टेबुल और न हीं घर का अन्य वस्तुएँ बन पाती हैं।

जगदीश बाबू के मन में आया कि पछिया हवा और पूर्वा हवा की लहर में पूरबा हवा की लहर पछिया हवा को मात दे देती है। इसलिए फूल, फल और लताओं के लिए समुचित पेड़ों का चयन करना और लगाना ही बुद्धिमता का द्योतक है। मिथिलांचलन में एक से बढ़कर एक फल, फूल, लता तथा छोटे-छोटे पौधों से लेकर बड़े-बड़े पेड़ और सुकाठ लकड़ी आदि भी विद्यमान है। फिर भी मिथिलांचल के सुविकास के लिए गहराई से इसका अध्ययन करना चाहिए..।

राजस्थान की यात्रा में...

जगदीश प्रसाद मण्डल जी की यात्रा की दौड़ में राजस्थान जैसे दर्शनीय स्थान भी छुटा हुआ था। यात्रा करने का सुनहला मौका भी हाथ लग चुका था, परन्तु समय के अभाव के साथ पैसे का भी अभाव था। जगदीश बाबू का ममियौत भतीजा राजस्थान के पाली जिला के अन्तर्गत डी.एल.एफ. सिमेन्ट कारखाने में सुपर वाइजर था, जो उन्हें बार-बार राजस्थान आने का आग्रह करता था। वैसे भतीजा- तेज नारायण मण्डल पढ़ा-लिखा नहीं था क्योंकि गाँव के विद्यालय को कोसी नदी लील चुकी थी। मनसारा में मातृक और मनसारा का भतीजा- तेज नारायण मण्डल था। कोसी-कमला से पीड़ित होकर वह राजस्थान कैं उस सिमेन्ट फैक्ट्री में सुपरवाइजर हो गये थे।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने मन ही मन सोचा कि वहाँ जाने तक ही मुश्किल है मगर यदि वहाँ पहुँच जाऊँगा तो क्या आगे वह नहीं करेगा? देखने वाले स्थानों को देख लूँगा और वहाँ मिट्टी-पानी, जलवायु, मौसम आदि की

जानकारी भी मिल जाएगी। अचानक एक दिन परिवार में आमदनी हुई और वे राजस्थान की यात्रा पर निकल पड़े। अकेले ही घूमने का स्वभाव था। दिल्ली से राजस्थान पहुँच गये- मन में पहुँचने की खुशी थी।

तेज नारायण मण्डल जब सुपरवाइजर बना तो वह अपनी पत्नी और एक भाई को भी साथ ले गया था। अपने भाई को उसी फैक्ट्री में नौकरी लगाकर तीन कोठली का एक मकान भाड़े पर ले लिया था।

शुरू-शुरू में राजस्थान में एन.के. पारीख नाम के एक व्यक्ति के यहाँ तेज नारायण जी रहने लगा था जो उसी फैक्ट्री के उच्च पद पर कार्यरत था और जिसे चार कोठलियों का मकान था। तेज नारायण मण्डल उन्हीं में से एक कोठली भाड़े पर ले लिया। धीरे-धीरे दोनों के बीच सम्बन्ध गाढ़ा होता चला गया। कारण भी था। एन.के. पारीख साहब का ससुराल नेपाल के काकरभिट्टा में था। इधर तेज नारायण मण्डल का दिमाग और तेज हो गया था। उसने उनकी पत्नी को मिथिलांचल से जोड़कर बहन बना ली- भाई-बहन का रिश्ता।

एन.के. पारीख अब तेज नारायण मण्डल को अधिक चाहने लगे थे तो उन्होंने कहा कि छुट्टी में तुम्हें पढ़ा दिया करूँगा। उस समय तेज नाराण अनपढ़ युवक था। अपने कथानानुसार पारीख साहब ने उसे पढ़ाना शुरू किया..। अन्तोगत्वा उन्होंने पढ़ा-लिखा कर तेज नारायण को उस फैक्ट्री का सुपरवाइजर बना दिया। सचमुच में पारीख साहब वचन के पक्के थे।

राजस्थान में बस से उतरकर जगदीश प्रसाद मण्डल जी सीधे डी.एल.एफ. सिमेन्ट फैक्ट्री पहुँचे और कार्यालय जाकर भतीजे के सम्बन्ध में जानकारी ली।

तेज नारायण मण्डल ड्यूटी पर नहीं था। पटना के व्यक्ति ने उन्हें साथ लेकर तेज नारायण मण्डल के डेरा पर शाम होते-होते पहुँचा दिया। बिजली की रोशनी में बगल के तीस-चालीस छोटी-छोटी दुकानों का बाजार मात्र वहाँ था। बीच होकर बस का रास्ता, फिर भी ठीक से नहीं देख पाया था।

तेज नारायण मण्डल ने जब उन्हें देखा तो खुशी का पारावार नहीं रहा और उनकी सेवा में तल्लीन हो गया। उन्हें बैठने और सोने के लिए स्पेशल खाट, जाजीम तथा रजाई लाकर दिये। चैत का महीना था। गरमी के कारण दस बजे के बाद घर से निकलने का मन नहीं करता था, परन्तु बारह बजे रात के बाद मोटे चादर की आवश्यकता पड़ जाती थी। सुबह होते ही देखने की ईच्छा जगी...।

डेरा के आगे अशोक के चार-पाँच पेड़ थे, वैसे तो मकान मालिक का घर आधी किलोमीटर हट कर था। परन्तु मवेशी का घर बगल में ही बनाया था। मवेशी भी ऐसी कि बिना बच्चे की दो भैंसियाँ।

मकान मालिक तीन बाप-बेटे थे, पिता बूढ़े थे और अधिक समय भैंसी की देख-रेख में लगे रहते थे। एक बेटा उसी सिमेन्ट फैक्ट्री में नौकरी करता था। और दूसरा बेटा घर-गृहस्थी के काम से लेकर भैंस दुहना और मोटर साईकिल से दूध बेचने तक का काम करता था। तीन किलोमीटर जाकर एक दुकानदार को प्रति दिन दूध देता था। उसे साठ बीघा जमीन थी, और एक बोरिंग भी था, खेत शुद्ध बालू का अर्थात् पहाड़ी बालू का क्षेत्र। वृक्ष के नाम पर सागरी, पहाड़ के अतिरिक्त खेतों में छोटा-बड़ा पत्थर पड़ा हुआ था।

सुबह में ही मकान मालिक से जगदीश प्रसाद मण्डल जी की जान-पहचान हो गयी। पैंसठ-सत्तर की उनकी उम्र थी। वे धोती पहने हुए थे।

सुबह में जब बेटा भैंसी दुहने लगा तो जगदीश बाबू ने देखा कि दूध तो कम ही हुआ, परन्तु दूध में पानी डाल दिया। उन्होंने पूछा- "पानी क्यों डाले हैं?" जवाब दिया कि दूध में पानी नहीं दूँगा तो भैंसी का थन जल जाएगा और दूध गायब हो जाएगा। जवाब सुनकर जगदीश बाबू हक्का-बक्का हो गये। कुछ नहीं बोल सके, वह भी दूध लेकर चला गया।

तीसरे दिन अजमेर में दरगा मेला देखने का कार्यक्रम बना। दरगा अजमेर का बहुत प्रसिद्ध और सुन्दर स्थान है। पहाड़ी क्षेत्र रहने के कारण अधिक साफ-सुथड़ा और स्थान के पूर्वी भाग में ऊँचा पड़ाड़ भी है। ऐसा मन में हुआ कि हिन्दुओं को रोकते होगें। मगर ऐसी बात नहीं थी। देखने वालों में

अधिक हिन्दू दर्शक थे। मनसा कबूल और संकल्प का विस्तार क्षेत्र और लोगों का चहल-पहल भी बढ़ा हुआ था। स्थान के भीतर ही थे कि साज-बाज, नाच-गान के साथ एक जुलूस को देखा। देखा कि हाथी ऊँट के साथ बिना इंजन की चार पहिया गाड़ी, जिसे आगे से और पीछे से लोग धक्का दे रहे थे। और उसे कोई लोग ही चला रहा था। इसके साथ-साथ मर्द-औरतों से सजा हुआ था वह जुलूस। रंग-बिरंग के बाबा लोगों का सुन्दर समूह निर्धन से अमीर सभी लोग साथ-साथ चल रहे थे।

दरगा देखने के बाद जगदीश बाबू पुष्कर गये। अजमेर में आम, जामुन, अमरूद इत्यादि के पेड़ भी देखे। वहाँ गुलाब फूलों की खेती अधिक होती है। पुष्कर एक पोखरनुमा स्थान है, जिसपर ब्रह्मा का मन्दिर है। वहाँ अनेकानेक घाट और धर्मशाला बने है। पुष्कर में भी दरगा जैसी भीड़ थी।

अजमेर के दर्शनीय स्थानों को देखने के बाद तीसरे दिन जयपुर के लिए कार्यक्रम बना। जयपुर की कला-कृर्ति देखकर बहुत खुश हुए और कहा- "सचमुच में जयपुर की कला-कृर्ति श्रेष्ठ है। जैसे मीरा का स्थान (मैरता) गये। बसनुमा रेलगाड़ी चलती थी। आगे कुछ भवनों को गुलाबी देखकर समझ गये थे कि यही राजस्थान का गुलाबी शहर है- पींक सीटी।"

एक ऐसा भी मन्दिर है जिसका आकार बहुत विचित्र है न तो बहुत बड़ा और न ही बहुत छोटा। आकार को देखकर ढोलपेटा बताया। लेकिन मन्दिर के भीतर अनेक मूर्तियाँ थीं। वैसे मन्दिर के भीतर आने जाने के लिए लोहे का गेट लगा हुआ था, जो सदैव लगा रहता है। दर्शनार्थी को देखने के लिए उस मन्दिर के छाती तक लोहे की मोटी छड़ की खिड़कियाँ चारो तरफ से बना दी गई है। भीतर में राज दरबार का दृश्य बना हुआ है। जिस प्रकार राजदरबार में सभी वस्तुएँ रहती है उसी तरह सभी सोने की बनी थीं।

जैसे देश में एक से बढ़कर एक स्थान है और मन्दिर भी है जो कला के क्षेत्र में कांतिवान है और आर्थिक क्षेत्र में पर्यटको के लिए लोमहर्षक तथा भारत के लिए वैभववान है। मगर मूल वस्तु अधिकांश स्थानों का गायब है जो

उसका महात्म्य है। उदाहरण रूप में कामरूप कामाख्या को देखा जा सकता है। कामरूप कामाख्या में सब कुछ की बलि प्रदान की जाती है परन्तु अन्यत्र अन्तर है। कुछ स्थानों में खास चीजों की बलि दी जाती है। प्रसाद का भी वैसा ही उदाहरण है। जगन्नाथपुरी के प्रसाद का रूप-गुण अलग किस्म का होता है।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी वैसे तो राजस्थान में कम ही दिन रहे। इसलिए मंहगाई की जानकारी नहीं हो पायी थी। फिर भी उन्होंने देखा कि 09 इंच तक की लम्बाई का अति छोटा सजमन-लौकी, दस रूपये में बिकता है, जिसका दाम अपने यहाँ आठआना या पच्चास पैसे भी नहीं होगा।

1999 ईस्वी में जगदीश बाबू राजस्थान गये थे। उस समय तीन रूपये प्रति कप चाय वहाँ बिकती थी। जबकि अपने यहाँ एक रूपया उसका दाम था। उसी प्रकार पान तीन रूपये प्रति खिल्ली बिकती थी जबकि अपने यहाँ उसका दाम मात्र बारहआना था। अन्न-अनाज तो उतना नहीं देख पाये थे परन्तु कुछ अनाजों का दाम सस्ता लगा। जैसे चीनिया बादाम। वहाँ चीनिया बादाम की खेती होती है। खाना-पीना अपने यहाँ जैसा नहीं, सीमित जिन्दगी सीमित भोजन। गरीबी है। मगर गरीबी का कारण भी भिन्न है। जैसा नाम है- मरुभूमि, वैसा ही वहाँ की भूमि मृतप्राय है। न तो मौसम सुहावना और न ही पेड़ वृक्ष आनन्ददायक। लेकिन राजघराना और औद्योगिक घरानाओं के होने से कल-कारखानों में गति है और साथ-साथ आरामदेह गाड़ी-सवारी भी।

डी.एल.एफ. सिमेन्ट कारखाना चहार दिवारो से बन्द था। जगदीश बाबू को इसकी समुचित लम्बाई-चौड़ाई का पता तो नहीं है परन्तु दस किलोमीटर से अधिक का घेराव था। बीच में सिमेन्ट का कारखाना बना हुआ था। पानी-बिजली का खास प्रबन्ध था।

कारखाना से दक्षिण एक बड़ा पहाड़ है। डयनामाइट से जिसमें से पत्थर तोड़ा जाता है। वैसे कारखाने में तीन हजार से अधिक श्रमिक काम करते थे। इनमें से कुछ लोगों का वेतन अधिक है और सुविधा भी अधिक है, परन्तु अधिकांश श्रमिकों की स्थिति उतना ठीक नहीं है। रहने का आवास नहीं और

अच्छी मजदूरी भी नहीं।

कारखाना का जो मुख्य प्रबन्धक थे, वे सेवा निवृत्त आई.ए.एस. थे। वे कारखाने के भीतर ही रहते थे और अधिक वेतन भी पाते थे।

मिथिलांचल का यह भी दुर्भाग्य है कि यहाँ सेवा निवृत्त अच्छे-अच्छे पदाधिकारी और अध्यापक भी दुहरा-दुहरा कर नौकरी करने लगे हैं। अरे बन्धु, आपके लिए वानप्रस्थ आश्रम या संन्यासी अवस्था कब आयेगी? या आने हीं नहीं देगें, क्या? जिस जगह मिथि-मालिनी की ऐसी स्थिति रहेगी उस जगह भगवान ही मालिक.. और कौन? जहाँ भगवान मालिक हो, वहाँ तो वैसा ही होगा न जैसा गाँव-घर में होता है। गाँव-घर में लोग फटै-पुराने कपड़े को फाड़ कर एक बाती बना कर और उसे करुआ तेल में भिंगोकर मिट्टी के बने दीप में देकर देवस्थान पहुँच जाता है और वहाँ जाकर, दीप जलाकार, अपना दोनों हाथ जोड़कर तथा अपने एक पैर के बल खड़ा होकर मांग लेता है- 'हे प्रभू, विद्या दो, धन दो, जीवन दो..!' मिला तो बढ़िया और नहीं मिला तो भी कोई बात नहीं, क्योंकि वह यही समझता कि मेरे भाग्य नहीं है..!

आज बेरोजगारों की स्थिति (मानसिक स्थिति) ऐसी ही बनती जा रही है। अंग्रेजों की गुलामी आ छाप तथा अन्ध विश्वास का जाल कि कोड़ों की यह वर्षा तुम्हें प्रभू के द्वारा ही मिल रहीं है...।

कारखाने के मुख्य प्रबन्धक को देखकर जगदीश बाबू ने तर्क-वितर्क किया कि सेवा निवृत्ति के बाद नौकरी करने वाले के कारण भ्रष्टाचार को बल तो नहीं मिलता है, क्या?

एक चौथाई से कम ही कर्मचारियों को स्थायी नौकरी मिली थी जिन्हें कुछ-कुछ सुविधाएँ भी मिली थी। शेष तीन चौथाई ठेकेदार के अन्तर्गत कार्य करते थे। कार्य का भी ढंग व्यावहारिक। दो सुपरवाइजर कार्य करते थे। दोनों को एक ही मोटर साईकिल मिली थी जिससे दोनों बारी-बारी से ड्यूटी सम्भालते थे। सभी ड्यूटी के पक्के थे। चौबीस घन्टों तक कारखाना चलता

रहता है। मोटा बालू अधिक था परन्तु कहीं-कहीं महीन बालू भी था जिसका उपयोग कृषि कार्य के लिए होता था, मगर पानी का लेयर बहुत नीचा था। बोरिंग गाड़ना मुश्किल होता था। गेहूँ, बादाम, चीनिया बादाम, बाजरा और तोर की भी खेती कहीं-कहीं होती थी।

मिथिलांचल जैसा राजस्थान में न तो पशु और न ही पक्षी है। एक-दो मोर-मयुर मिले। यहाँ तो झुण्ड का झुण्ड कौआ, मैना, तोता, बगरा-गोरैया आदि चिड़ियाँ हैं परन्तु वहाँ ऐसा नहीं। वातावरण रहने के लिए अनुकूल नहीं, न था पेड़-वृक्ष और नहीं खाने की किस्म-किस्म की वस्तुएँ। पानी पीने का जल स्रोत की किल्लत भी थी। मुश्किल से एक दो गाये कहीं-कही दिखती थी। सुबह-प्रातकाल ट्रेक्टर पर हरे-हरे ठठेर या सुखा हुआ ठठेर लाकर नाद में डाल देते थे जिसे गाय खाती थी। कबूतर भी था परन्तु खाना वर्जित। जो खाता था उसे जुर्माना देना पड़ता था।

माँ का स्वर्गारोहण..

राजस्थान जाने से डेढ़ वर्ष पहले जगदीश प्रसाद मण्डल जी की माँ का निधन हो गया था, उनकी माँ की अवस्था पनचानवे वर्ष की हो गई थी। माँ के अन्तिम दर्शन...

दिन के बारह बजे जगदीश प्रसाद मण्डल की पत्नी से वह बोली- “कनियाँ, तुम सभी खाना खाये?”

पतोहू- “हँ माँ।”

“बच्चा गाँव में ही है कि नहीं?”

बच्चा से तात्पर्य जगदीश प्रसाद मण्डल या पुत्र। वैसे खाने के समय वह जगदीश प्रसाद मण्डल को देख चुकी थी फिर भी उन्हें यह याद नहीं आ रहा

था, रूग्णावस्था में विस्मरण की गति का बढ़ जाना स्वभाविक है। मन में शंका हुआ था। फिर बोली- "कनियाँ, मेरा बिछावन कर दो न।"

एकादशी का दिन था। पतोहू ने वरामदे पर ही बिछावन कर दिया। वह बैठे-बैठे ही बिछावन पर खिसकती हुई गई और सो गई, मगर निद्रा में नहीं महानिद्रा में चली गई जहाँ से कोई नहीं जागता। दर्शन भाषा में इसे महापरिनिर्वाण कहते हैं। फिर नहीं उठी और पतोहू रोना शुरू कर दी थी।

अन्तिम समय तक माँ की आशा जगदीश प्रसाद मण्डल जी को नहीं टूटी- मातृ वत्सल्य प्रेम का निर्वहन किया, प्राण बचाने की भरसक कोशिश की। कहावत है- 'जबतक सांस तबतक आश'। जगदीश प्रसाद मण्डल जी माँ का ऐसा लाल है। जिन्दगी में बड़े-बड़े दुर्दिन भी आये थे, जिसने आत्मबल को और मजबूत कर दिया था, सेवा की भावना तन-मन में भर दी थी जिससे जगदीश प्रसाद मण्डल जी श्रवण बेटा बनकर माँ की अन्तिम ईच्छा तक, आशा करते रहे।

सुभ्यस्त परिवार में माँ का जन्म हुआ था। मनसारा- मैयके या बाबुल का घर। सम्पत्ति और समांग- सदस्यों में आगे रहनेवाला परिवार। जगदीश प्रसाद मण्डल के नाना जी उसे अधिक प्यार करते थे- लाडली बेटी थी, कनिष्ठ बेटी और प्यारी बेटी थी, वह। मनसारा दरभंगा जिले के घनश्यामपुर ब्लॉक का एक गाँव है। जगदीश प्रसाद मण्डल की माँ सात- भाई-बहनों में सबसे छोटी थी। इसलिए उसे सबका प्यार-स्नेह मिला था। सबसे बड़ी बहन गोधनपुर में थी। एक बहन दीप गाँव में भी थी जिसका पुत्र क्रान्तिकारी नरसिंह मण्डल था। 1942 ई. में झंझारपुर के सर्कल के आन्दोलन में उसे भी गोली लगी थी। जगदीश प्रसाद मण्डल जी की माँ की मौसी का ससुराल भी, पीहर बेरमा में ही था। इसी परिवार के पोखर को बेरमा में अधिकारी पोखर के नाम से जाना जाता है। यह पोखर जगदीश बाबू के घर के बगल में अभी भी है। इसी तरह तीन कुएँ एक सीध में भी थे।

तीन भाईयों के बीच चाँदी के सिक्के गिनकर नहीं, तौलकर बाँटे गये थे।

प्रत्येक को तराजू पर तौलकर बारह-बारह पसेरी चाँदी के सिक्के मिले थे।

ऐसे सम्पन्न परिवार में जगदीश प्रसाद मण्डल जी के पिता का विवाह होना कुछ अजीव सा लगता है, परन्तु इसके पीछे इतिहास भी है। साथ-साथ खानदानी मर्यादा और सुन्दर पहल भी है।

जगदीश बाबू से पहले तक परिवार में हल जोतना और गाय दुहना वर्जित था। परिवार की खानदानी मर्यादा से प्रभावित होकर माँ की मौसी जो बेरमा में थी, का पहल शुरू हो गया। पिता जी को देखने के लिए पाँच लोग आये। पाँचों ने अपनी-अपनी नजर से पिता जी के साथ-साथ परिवार को देखा और परखा। एक लम्बा खलिफा भी उन लोगों के साथ था। खाना खाने के बाद घर से निकलते समय चौखट में उसे जोर से चोट लग गयी और वह नाराजगी से बोल पड़ा- "इसी जगह सम्बन्ध जोड़ेंगे, कुटुम्ब बनायेंगे, जिसे घर-द्वार नहीं है!"

मगर मौसी को पसन्द था, परिवार का व्यवहार, रहन-सहन और खेत-खलिहान। इसलिए बात जारी रही।

दूसरी पहल या सिफारिश जगदीश प्रसाद मण्डल की मौसी की तरफ से की गई जो बेरमा के बगल में गोधनपुर में बसती थी और उससे 30 साल बड़ी थी।

तीसरी सिफारिश दीपवाली मौसी की तरफ से भी हुई अर्थात् नरसिंह मण्डल की माँ की ओर से।

महिला समूह की बातों को काटना कठिन हो गया था, ये हीं कारण, माँ का विवाह हो गया- मौसियों की जीत हो गई।

35 वर्ष की आयु से पहले वह विधवा हो गई थी। फिर भी उसने एक सफल गृहिणी बनकर परिवार और सन्तानों की देख-रेख की थी। पति के निधन के बाद लगभग 60 वर्षों तक जीवित रही।

इस लम्बी अवधि में उसने अपने मैयके- मनसारा जैसे सुभ्यस्त परिवार

को उजड़ते देखा। कोसी-कमला के चपेट में आकर मनसारा उजड़ गया था। बीच बस्ती होकर कमला नदी बह गई। इसके साथ अपने तीनों भतीजे और दोनों पोतों को एक-एक साल जेल में बन्द देखा; विधवा मौसी को देखा; विधवा बड़ी बहन को देखा। विधवाओं के आँसू देखकर वह सहन न कर पायी थी और कम ही उम्र में खूद वैधव्य जीवन स्वीकार कर लिया था। इतना ही नहीं नरसिंह मण्डल, बहन के पुत्र को उसने गोली से घायल देखा; हरिनाही के भागीन (गोनर मण्डल आदि) को कोसी में उजड़ते देखा, जिसे फिर से बसाई भी थी। जिन्दगी के धक्के ही पंजा मजबूत करते हैं, वह समाज-जंगल की शेरनी थी और दिल से मजबूत बन चुकी थी।

मनसारा उजड़ने से बेरमा, गोधनपुर और दीप एक ही परिवार से सम्बद्ध होकर और मजबूत कड़ी बन चुके थे। परिवार के दो सूत्र होते हैं :- पहला वंश और दूसरा व्यवहार। एक जगह रहने या नहीं रहने से सम्बन्ध प्रभावित होता रहता है। जब नरसिंह मण्डल को गोली लगी थी तो बेरमा ईलाज के समय आया था और बहुत दिनों तक रहा था।

माँ की मृत्यु के बाद जगदीश प्रसाद मण्डल जी के सामने श्राद्धकर्म से लेकर भोज का प्रश्न खड़ा हो गया। स्थिति अच्छी नहीं थी, मगर समाज भी तो समाज है, आश्रय दाता है, समस्या भी देखता है। तीस-चालीस हजार रूपये का कार्य था, मगर उनके मन में दो प्रश्न उठ रहे थे, किसी से नहीं कहते। प्रश्न था कि एकबार खाने वालों और नहीं खाने वालों को खिलाकर सम्बन्ध तोड़ लिया जाय। भरपेट भोज खाने के लिए रात-दिन दरवाजे पर रहकर कीमती समय नष्ट कर दिया जाता है, यह कहाँ तक ठीक है? लेकिन यह भी डर था कि समाज में ऐसे भी लोग होते हैं जो आसन लगाकर, पल्थी मारकर खाते हैं, परन्तु अपनी बारी में...।

दूसरा प्रश्न मन में नाच रहा था कि कर्म-काण्ड तो हटा दिया गया, परन्तु भोज तो रह ही गया। एक मन यह करता था कि एक बार भोज खिलाकर छुट्टी ले लेंगे। इससे इतना तो कम-से-कम होगा कि पाँच गाँवों के पंच या समाज भी

अपनी नजर से इसे देख लेंगे। लेकिन जगदीश बाबू कुछ बोलते नहीं।

आषाढ़ का मेघ तड़तड़ाया, तेरायत दिन अर्थात् सारा बनाने के बाद (पीढ़ी बनाने के बाद) श्राद्ध या भोज की चर्चा उठी। जगदीश प्रसाद मण्डल जी का फुफेरा भाई 'गोनर मण्डल' हरिनाही से बेरमा आया और जोर दिया कि मामी ने अर्थात् जगदीश बाबू की माँ ने मुझे बेटा जैसा पालन-पोषण किया था, इसलिए भोज मैं करूँगा। गोनर मण्डल आठ वर्ष पहले उसे गया धाम भी ले गया था। गोनर मण्डल की अपनी स्थिति अच्छी नहीं थी, परन्तु छोटे भाई के पाँच बेटे बाहर कमाते थे- एकदम कमासुत थे। इन्हीं पर भरोसा और उत्साह। भतीजा- बिलट मण्डल को उसके पिता की बीमारी और ईलाज की कहानी और मामी की याद बार-बार दिलाई और कहा कि उस घड़ी में मामी ने देख-रेख कैसे की थी। इसें सुनकर और समझकर सभी भाईयों ने भोज करने की हामी भर दी- इसी को कहते हैं, मेघ का तड़तड़ाना।

जिस तरह पोखरे में मछली चाल देती है उसी प्रकार जगदीश बाबू की भाभी जिसका पति पहले ही स्वर्गवास हो गया था, ने भी परिवार की तरफ से कहा कि जितना भोज भैया 'गोनर मण्डल' करेंगे, उतना हम भी करेंगे। कारण था कि उसके दो पुत्र- राजदेव मण्डल और रामानन्द मण्डल कमासुत थे और दिल्ली में नौकरी करते थे। मेघ तड़तड़ाना यह नहीं तो और क्या?

जगदीश प्रसाद मण्डल जी ने हिसाब लगाकर देखा कि दो पंचगामा भोज हुआ था, जिसमें प्रति भोज खर्च के दृष्टिकोण से लगभग तीस-पैंतीस हजार रूपये खिलाने-पिलाने में और तीस-पैंतीस हजार रूपये क्रिया-कर्म में खर्च हुए थे। इसमें अपना हिस्सा तो आधा ही लगेगा। ऐसा बीड़ा उठाया जा सकता है। गाँव में भोज को लेकर एक नई परम्परा चल चुकी थी। मिठाई या रसगुल्ला का भोज हो चुका था। जगदीश बाबू जब भोज के प्रकार पर नजर दौड़ाते तो मन भटक जाता था। भोज अपयश का घर भी तो होता है। इसके साथ मन में यह भी बात उठती थी कि आज का पंचगामा से पहले अलग है, भिन्न है। भोज, ननौर, लकसेना, परसा... आदि खाते आ रहे हैं। अब जगदीश प्रसाद मण्डल जी का खेमा दूसरा बन गया है। भोज करने की हिम्मत तो हुई, परन्तु

मिठाई- रसगुल्ला का नहीं। उन्होंने भात-दाल-सब्जी का स्वादिष्ट और अच्छा भोज किया, जैसा स्वादिष्ट भोज कथा-साहित्य गोष्ठी- 'सगर राति दीप जरय' में भाई-बन्धुओं और सज्जनों को खिलया था, वैसा ही मह-मह भोज किया। इस भोज में उन्हें अधिक यश और जय-जयकार मिला। जगदीश बाबू ने भोज खिलाकर भोज खाना छोड़ दिया।

माँ के मरने के बाद जैसे कुम्भकार के आबा में आग फैलती जाती है वैसे ही उनके कुटुम्बों के साथ हुआ। कुछ दिनों के बाद उनकी सास मर गई। उसकी उम्र करीब नब्बे वर्ष थी। उस भोज को भी छोटा किया। मछधी (सिमरा) में जगदीश प्रसाद मण्डल जी का ससुराल। तीन भाई और एक बहन के बीच सासु या सासु का श्राद्ध-कर्म।

जगदीश बाबू की पत्नी जीवित माँ का मुँह देखने के ख्याल से पहले ही वहाँ चली गई थी, जो श्राद्ध-भोज तक नहीं आई। सास के ज्येष्ठ भाई सरकारी नौकरी में थे जिसका बल मिला था। जगदीश बाबू ने चुप्पी साध ली। मगर ससुराल से सम्वाद आया कि सौ-सवा-सौ कठियारी का खर्च आपको ही लगेगा, परन्तु जगदीश बाबू ने फिर चुप्पी साध ली। आठ दिन जब बीत गये और परसों नख-केश होगा तो उन्होंने यह सम्वाद भेज दिया कि आपलोग नख-केश का भोज करते हैं परन्तु हम बेरमा के लोग इसे छोड़ चुके हैं, फिर कहिए मेरा आना उचित होगा? भोज छोटा हुआ।

ससुराल की कथा को भुला भी नहीं था कि दीप में उनका मसियौता भाई नरसिंह मण्डल, उम्र 80-85 वर्ष, मर गये। वहाँ भी श्राद्ध-कर्म और भोज-काज की चर्चा शुरू हुई। मगर दीप में भोज बड़ा होते हुए भी छोटा होता है क्योंकि गाँव बड़ा तो भोज बड़ा। संयोग अच्छा बना था कि मृत्यु से पहले उसे स्वतंत्रता सेनानी का लाभ मिल गया था, जिससे दो-ढाई बीघा जमीन भी खरीद ली थी। गाँव में ही किसी आदमी के यहाँ आवश्यकतानुसार नौकरी करने लगे थे जिसे पेंशन मिलने पर छोड़ दिया था। सादा भोज को छोटा भोज कहा जाता है।

उसी बीच जगदीश बाबू की पत्नी का मामा (ममियौता श्वसुर) भी मर गये। वैसे उनकी उम्र भी अस्सी वर्ष से अधिक हो चुकी थी। मगर वहाँ से कोई जवाबदेही उन्हें नहीं दी गई थी।

इस तरह पुरानी पीढ़ी का अन्त हो गया।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी 1999 ईस्वी में जिन्दगी की दौड़ में लड़खड़ा गये थे। उन्हें जिन्दगी के सुख-दु:ख का तथा स्वाद का लम्बा अनुभव हो गया था- 52 वर्ष के हो गये थे। आशा और निराशा के पलड़े पर झूलने लगे थे। धारा- 307 में सजा भी मिल चुकी थी और एक शेष मुकदमा रह गया था जो झंझारपुर-मधुबनी के बीच कोर्ट के हेराफेरी में दब चुका था। फास्ट ट्रैक कोर्ट खुलने के बाद जब तलाश किया गया तो वह फाईल मिल गयी। इस बीच उस केस के अट्ठाईस लोगों में से कई लोग मर चुके थे। जिसमें तीन मुदालय और दो गबाह भी थे। संगठन का रूप भी तितिर-बितिर हो चुका था। जिसका मुख्य कारण था- सामाजिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक... इत्यादि।

जगदीश प्रसाद मण्डल एवम् इनके लोगों के विरोधियों का समाज में अन्तिम अस्त्र था- अन्तिम मुकादमा, मगर कर्मठ एवम् जुझारू जगदीश प्रसाद मण्डल को लोगों की भलाई और सामाजिक विकास के लिए जो झेलना पड़ा था वे झेलते रहें।

दिनांक 05-05-2005 ईस्वी में अन्तिम अस्त्र भी कुंठित हो गया, अर्थात् वह भी समाप्त। जगदीश बाबू बिल्कुल मुक्त। उस अवधि में दूसरी ओर मुड़ना अथवा जीवन को दूसरी दिशा में ले जाना उचित नहीं समझा। विचार देने वालें उन्हें उपदेश देते थे कि बिना मतलब का परेशान होना ठीक नहीं। उपदेश तो सिमरिया घाट के पण्डित भी देते हैं, परन्तु गंगा की धारा और विचार की धारा दोनों दो चीजे हैं।

जगदीश बाबू को नूतन कल को देखने की लालसा शुरू से ही थी। जो किए गए कार्यों से और बलबती बनती गई। अर्थात् मजबूत होती गयी।

यह एक उदाहरण है कि साधारण परिवार में जब शिक्षा का उदय हुआ

तो उन्होंने परिवार में शिक्षा की ज्योति जलाकर अपने परिवार में ही नहीं समाज में भी प्रथम एम.ए. बनकर सफलता का नया इतिहास रच दिया। वैसे तो बेरमा में पिछली पीढ़ी में संस्कृत माध्यम से एक पर एक विद्वान-पण्डित हुए थे। मगर जेनरल से जगदीश प्रसाद मण्डल जी प्रथम एम.ए. हुए।

दूसरा उदाहरण है कि जब गाँव के किसानों को बोरिंग दमकल हो गए तो खेती में नवीनता भी आई। जगदीश बाबू दो तरह की खेती करते थे- अन्न-अनाज की और नकदी।

नकदी खेती में सब्जी-तरकारी और फलों की खेती करते थे। मगर जिस ढंग से वे खेती करना चाहते थे वैसा नहीं कर पाते थे। इसका कारण भी था। और वह था समय का अभाव तथा उपद्रव (उजाड़)। उपद्रव का मतलब खेती का उजाड़, अर्थात् खेतों में लगी फसल को मवेशियों द्वारा चरा लेना तथा नुकसान करना। ऐसी स्थिति में मेहनत भी चला जाता था। खर्चा या लागत का कोई महत्व नहीं रह जाता था। और फसल भी हाथ नहीं लगती थी। पूँजी के साथ समय भी नष्ट। मारपीट झगड़ा की स्थिति बन जाती थी। जो ठीक बात नहीं थी।

जगदीश बाबू के विरोधियों के लिए इस बात की खुशी थी कि जब उन्हें (जगदीश बाबू को) 307 धारा में सजा मिलेगी और जेल जायेंगे तो दस वर्ष से पहले जेल से बाहर नहीं निकल पायेंगे। उस बीच तीन कट्ठा में बन्धा गोबी ढंग से बोरिंग वाले खेत में लगाये थे। बन्धा गोबी के साथ जगदीश बाबू की धर्मपत्नी (नेक सलाहकारिणी श्रीमती रामसखी देवी) ने फूलगोबी भी लगाने का सुझाव दिया। वह फूलगोबी दो किलो से लेकर चार किलो तक का हुआ। ऐसे कुल अट्ठारह सौ गाछ थे। बन्धागोबी का दाम दो रूपये से पाँच रूपये प्रति किलो था। दिन-दहाड़े सभी को उखाड़ कर ले गये। कितना बड़ा उपद्रव या नुकसान था..।

दूसरा कारण यद्यपि विरोधियों को अँगूठा दिखाते हुए जेल से जल्द निकल गये थे। परन्तु जेल से निकलने के तीन महीने के बाद वे कछुबी गये

और उत्तरबारी टोल में एक चाय की दुकान में बैठ गये। वहाँ इनके साथ लोगों ने ऐसा दुर्ष्यवहार किया कि मानों बहुत बड़ा जेल का अपराधी हो। सर्व साधारण लोगों ने भी, जिसे न मुँह और न कान था...।

कछुबी का रत्न कालीबाबू (कालीकान्त झा) के परिवार के साथ खाना-पीना, आना-जाना लगा हुआ है। वैसे कछुबी में दो ही व्यक्ति अभी तक आई.पी.एस. थे। जिनमें काली बाबू प्रथम।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी के मन में विचार का ज्वार-भाटा उठा करते थे। उन्होंने सोचा कि हजार वर्षों के पेड़ अपने आप में नवीनता लाते ही रहते हैं। चाहे नवटुसा हो, नव पल्लव हो, नव शिर हो, नव कलश हो या कि नवीन पत्ते हो। वे जिन्दगी की दूसरी दिशा की ओर निहारने भी लगे थे।

केश-मुकदमे से छुटकारे के बाद और क्या करते? गुजर-बसर के लिए खेती कर लिया करते थे। नौकरी की ओर अर्थात् सरकारी नौकरी की तरफ कभी भी मन से नहीं देखा। जबकि उनके पास अच्छी डिग्री थी। व्यापार तो कर ही नहीं सकते थे, परन्तु जिन्दगी तो काठवाली साईकिल नहीं न है, जो काठ के पैडल से थाल-कीचड़ रास्ता-कटायर में भी चल सकती है और समय पड़ने पर कन्धे पर उठा भी लिया जाता है तथा उसे लेकर गहरे पानी में कुछ दूर तक पार किया जा सकता है। जिन्दगी तो गाड़ी है, जिसे केवल पटरी-पटरी ही दौड़ा सकते हैं। एक पटरी से दूसरी पटरी पर चढ़ा सकते, मगर इसके लिए पैट-पाही को काटने का जुगाड़ करना पड़ता है, दूसरी पटरी पर लाने का यह भी अर्थ है कि छोटी लाईन (मीटर गेज) से बड़ी लाईन (मीटर गेज लाईन) पर चढ़ाना। बड़ी लाईन पर चढ़ाने से पहले आवश्यक परिवर्तनों पर भी ध्यान देना पड़ता है, जैसे धुरी बड़ी हो, डिब्बा बड़ा हो, पार्टों मे परिवर्तन... इत्यादि। प्रश्न इतने ही नहीं है और भी है। जितने तरह की पटरी होती है, पटरी की गति भी, शक्ति भी और पूँजी भी उसी अनुपात में लगते हैं तब ही गाड़ी चल सकती है। इसलिए जीवन को समझना और सम्भालना बड़ा ही कठिन है।

जगदीश बाबू संघर्ष और सामाजिक कार्य करते-करते अत्यधिक अनुभवी बन चुके थे। अब अधिक पीछे की जिन्दगी की ओर नहीं आगे की जिन्दगी की ओर देखा करते थे। वे सोचा करते थे कि समाज के लिए उन्होंने क्या नहीं किया, परन्तु जिसके लिए किया वही गलत समझ बैठा। कहावत है- 'जिसके लिए चोरी की वही कहा चोर'। जगदीश बाबू अपने अनुभव को, अपनी व्यथा को तथा अपनी सोच को समाज तथा लोगों के बीच साझा करना चाहते थे, ताकि व्यक्ति-व्यक्ति और समाज में नव चेतना आ सके। उन्होंने अब साहित्य की ओर मुखातिब होने का निर्णय किया, हाथ में लेखनी ली और लिखना चाहा, परन्तु वह कठिन था...।

साहित्य जगत की दशा-दिशा किसी से छिपी नहीं है। इस जगत में भी लुका-छिपी का खेल चलता है। मान-अपमान का खेल चलता है, और प्रकाशन द्वारा लाथ-अस्वीकार करने का भी खेल चलता रहता है। मैथिली साहित्य-जगत समाज से इतने दूर, कोसों दूर हट चुका है कि इसे समाज से जोड़ना आसान नहीं।

वैसे ऐसी बात मैथिली साहित्य-जगत में ही नहीं है, अन्य-अन्य भाषा-साहित्य में भी अधिक है। जैसे कबीर दास की चर्चा मैथिली साहित्य में कम है, लेकिन इतिहास में उनके जीवन का जो वर्णन किया गया है वह उतना विवेकपूर्ण नहीं है जितना होना चाहिए। विवेकपूर्ण नहीं होने का कारण है कि कबीर दर्शन आज समाज से दूर हट गया है। प्रचार करने वाले खुद कबीर दर्शन को नहीं समझ पाते है। अज्ञानवश जोड़-घटाव और मिलावट करते है। विलक्षण रीति को मलिन करते रहते है- स्पष्ट नहीं गुमराह करते है। उसी प्रकार गोस्वामी तुलसी दास जो गोस्वामी कहलाते हैं, मगर उन्होंने कितनी गायें पाल रखी थी? सही अर्थ के स्थान पर विकृत अर्थ परोसा करते। आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य की रचना युगानुसार की जाए।

हाई स्कूल में जगदीश बाबू प्रतिभा-सम्पन्न छात्र थे। उस समय अर्थशास्त्र की भी पढ़ाई होती थी जिसे अति कठिन विषय समझा जाता था।

चालिस प्रतिशत नम्बर लाने में भी छात्रों का पसीना छुटने लगता था। उसमें भी केजरीवाल हाई स्कूल, झंझारपुर के लत्ती बाबू (स्व. यदुनन्दन साह) की सोच अलग थी। उनके हाथों से बीस प्रतिशत नम्बर मिल जाना, बोर्ड में पास कर जाना, यह चर्चित था। ऐसी स्थिति में जगदीश बाबू पचास प्रतिशत नम्बर लाकर चर्चित हुए थे। ऐसी स्थिति में विद्यालय के श्याम बाबू (स्व. श्यामानन्द झा) ने जब जोर से कॉपी पढ़कर दी तो अर्थशास्त्र ने इनके मन में ऐसी जगह बनाई कि कार्ल मार्क्स के दास कैपिटल से लेकर अमर्त्य सेन के अर्थशास्त्र तक इनका परिचय करा दिया। कहावत चरितार्थ हुआ- 'द प्राइक्टकल नॉलेज ऑफ एनी सब्जेक्ट मैक्स अदर सब्जेक्ट इजी'।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी की जैसी सोच थी, विलक्षण बुद्धि भी वैसी ही थी, परन्तु जो वे समाज को देना चाहते थे वैसा नहीं हो पाया। उदाहरण सामने है कि जब बे पंचायत चुनाव में पार्टी की ओर से प्रत्याशी थे और निर्विरोध चुने जाने वाले थे तो इनके विरोध में वही खड़ा हो गया जिसके लिए जगदीश बाबू 18 दिनों तक जेल में रहे थे। इससे इनका मन टूट गया। पीछे उलटकर देखा तो महाभारत–हिन्दुओं का एक महाग्रन्थ–की घटना याद आई। उन्होंने देखा कि लड़नेवालों ने दिल खोलकर लड़ा था, अच्छाई के लिए जान भी दे दी थी, परन्तु महाभारत के बाद क्या मिला था? ..वैसे ही जगदीश बाबू जिन्दगी के निर्णय के मोड़ पर थे लेकिन सही निर्णय नहीं ले पाते थे- आगे से या पीछे से या दोनों से या एक बार ठोस निर्णय।

आगे से ही 'इतिश्री' करने का निश्चय किया। वे सुनहले मौके की तलाश में थे। मधुबनी जिले के बासोपट्टी में पार्टी (भाकपा) का राज्य सम्मेलन हुआ। पार्टी का विद्वान महासचिव वर्द्धन–ए.बी. वर्द्धन–साहब के साथ-साथ बंगाल के भी कॉमरेड आये थे। बिहार के सभी जिलों से भी सभी कॉमरेड आये थे। अच्छा सम्मेलन और सफल सम्मेलन हुआ था। मधुबनी जिले का एक कर्मठ कार्यकर्त्ता होने के नाते जगदीश प्रसाद मण्डल जी भी उपस्थित थे और सबके प्रिय बने थे। अनेक साहित्य-प्रेमी, लेखक या रचनाकार भी थे। उनलोगों ने जगदीश बाबू को काफी उत्साहित किया प्रभावित किया। इस सुनहले मौके

को जगदीश बाबू हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। उन्होंने कहा- “ओ विद्वानों, साहित्यकारों, साहित्य प्रेमियों, अब आप हीं लोगों के साथ मैं भी आ रहा हूँ।”

जगदीश बाबू जो कहते हैं वैसा किया करते हैं। वे कर्मवीर इंसान हैं। यात्रा के दौरान मैंने जब उनसे यह जिज्ञासा की थी कि सर, समाज आज गर्त्त में जा रहा है। उन्होंने कहा था कि रामेश्वर बाबू, समाज आज गूंगा-बहरा होता जा रहा है। हैवानों की धरती बनती जा रही है, समाज। इस पर मानवीय इंसान का बीज बोने की आवश्यकता है। मैंने उनकी मानवीय भावना को समझा और कहा कि सर, इसके लिए शिक्षा-संस्कार परमावश्यक है। मैं कटी पतंग की तरह हो चुकी एक अनाथ बौकी (गूंगी) पर लिख रहा हूँ। उन्होंने कहा-

“लिखीए, और खूब लिखीए, मगर विकृत समाज गूंगी को नोचना जानता है, उसमें बोल भरना नहीं जानता है।” मैंने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि मगर सर, मैंने अपनी बौकी में बोल भी भर दी है। उन्होंने मेरा मनोबल बढ़ाया और कहा- “बहुत अच्छी बात है।”

इसके बाद उनहोंने अपनी उत्तम भावनाओं को अभिव्यक्त किया। उनकी उद्गार वाणी की उदधि में मैं डूबता चला गया। फिर उन्होंने कहा-

“रामेश्वर बाबू, मैं समाज और देश निर्माणार्थ मशाल लेकर तथा हाथ में रचना की तूलिका लेकर मिथिला-मैथिली के सौन्दर्यीकरण के लिए चल पड़ा हूँ- लिखता हूँ, लिखता रहूँगा- सन्देश-उपदेश आजीवन।”

मैंने धन्यवाद और उन्हें साधुवाद दिया और भरोसा दिया कि सर, आपके साथ जमात है..!

उन्होंने जिन्दगी का ट्रेक बदल लिया और कलम का सहारा ले लिया। अब खेत में नहीं साहित्य-मैदान में, समाज-कल्याण के लिए, तथा मानव-सेवा के लिए दौड़ लगाने का बीड़ा पान किया...।

“तूलिका उठाकर चल पड़े जो नूतन साहित्य निर्माण को
रचना के शब्दों से जिसने बुना आदर्श समाज को
शब्द ब्रह्म है, शब्द शक्ति है शब्द ही जगाता इंसान को

जगदीश बाबू के विचार-सन्देश भी गढ़ता मानव-इंसान को
ले मशाले चल पड़े हैं, घर-घर अलख जगाने को
मैथिली-मिथिला के धरातल पर मानव-इंसान बसाने को।”

- रामेश्वर प्रसाद मण्डल

‘ईति’



रामेश्वर प्रसाद मण्डल : संक्षिप्त परिचय

श्री रामेश्वर प्रसाद मण्डल का जन्म मधुबनी जिले के प्रसिद्ध प्रखण्ड- फुलपरास के रामनगर पंचायत के अधीनस्त ग्राम- मुशहरनिया, पो. रतनसारा, भाया- नरहिया में 12 जुलाई 1956 ईस्वी को एक मजदूर किसान परिवार में हुआ। ये 'माय टुअर' बालक कहलाते थे, क्योंकि जन्म के एक वर्ष बाद ही इनकी माँ स्वर्ग सिंधार गई थी। इन्होंने अपने गाँव के प्राथमिक विद्यालय मुशहरनिया से लोअर प्राइमरी पास किया और मध्य विद्यालय बैरियाही में नाम लिखाया। उस समय मैट्रिक बोर्ड की तरह ही मिडिल बोर्ड की परीक्षा संचालित होती थी, जिसे कठिन मानी जाती थी, परन्तु इन्होंने कठिन परिश्रम करके प्रथम श्रेणी से उसे पास किया। अब ये एक तेज छात्र के रूप में माने-जाने लगे। मैट्रिक के लिए इन्होंने श्री सागर सार्वजनिक उच्च विद्यालय, नरहिया में अपना नामांकन करवाया और छात्रवृत्ति प्राप्त कर आगे की पढ़ाई जारी रखी। वहाँ भी इनका एकादमी कैरियर बहुत उत्तम रहा। ये सभी वर्गों में प्रथम स्थान का हकदार बनते रहें। जिस कारण विद्यालय के सभी शिक्षक एवम् सुयोग्य प्रधानाध्यापक स्व. नागेन्द्र प्र. सिंह इन्हें अधिक पसन्द करते थे। इन्हें सबका आशीर्वाद प्राप्त था। 1973 ईस्वी में मैट्रिक पास किया। बोर्ड के तात्कालिक अध्यक्ष नागमणि की कार्य-शैली के कारण तथा कदाचार मुक्त परीक्षा का आयोजन के कारण उस वर्ष मात्र 21 प्रतिशत रिजल्ट घोषित किया गया था। कई उच्च विद्यालयों को तो शून्य का भी सामना करना पड़ा था। ऐसी स्थिति में नरहिया उच्च विद्यालय से मात्र 7 छात्र हीं पास हुए थे। मैट्रिक परीक्षा से पहले श्री मण्डल का डेरा (नरहिया) में भयंकर आग लग गई जिसमें इनकी सभी किताब, कॉपियाँ आदि जल गये, फिर भी पुस्तकों के अभाव में द्वितीय श्रेणी से मैट्रिक पास किया। और निर्मली कॉलेज निर्मली, सहरसा (एच. पी. एस. कॉलेज, निर्मली, सुपौल) में इन्होंने अपना नामांकन कराया जहाँ से बी.ए. पास किया। निर्मली कॉलेज में भी इनका अकादमी कैरियर बहुत उत्तम रहा। कॉलेज में वाद-प्रतिवाद का कार्यक्रम बराबर होता रहता था। 'कलम या कि

तलवार' में श्री मण्डल जी ने कलम के पक्ष से विजय प्राप्त की थी जिससे ये चर्चित हुए। पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रामजी प्रसाद मण्डल जी की एवम् गणित के विभागाध्यक्ष स्व. हनुमान प्रसाद शर्मा (डीन) जी की सहानुभूति सदैव इन्हें मिलती रही। कॉलेज में 'विज्ञान प्रगति' प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसमें चार आदर्श पुरस्कारों की व्यवस्था की गई थी। समय पर परीक्षा का संचालन हुआ और घोषित समयानुसार पुरस्कारों का वितरण भी हुआ। भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद तात्कालिक माननीय एस.डी.ओ., वीरपुर, आर. तिवारी द्वारा पुरस्कार दिये गये थे। श्री मण्डल ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया था। स्नातक के बाद घर की दयनीय स्थिति देखकर होम ट्युशन से धन-धर्म कमाने लगे। दोस्तों की सहानुभूति इनके प्रति रही थी, जिनकी चिरस्मरणीय सहायता से डबल एम.ए. भी किया- एक 1982 ईस्वी में दर्शनशास्त्र से और दूसरा 1985 ईस्वी में अंग्रेजी से। इस बीच प्राइवेट कॉलेज किसनीपट्टी, फुलपरास में कुछ दिनों तक व्याख्याता पद पर कार्य किया और फिर कर्पूरी नागेश्वर शम्भूनाथ जनता कॉलेज सरौती (घोघरडीहा) में व्याख्याता- दर्शनशास्त्र विभागाध्यक्ष पद पर कार्य किया। इसके बीच दो बार बिहार लोक सेवा आयोग, पटना द्वारा आयोजित संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा में अहर्त्ता प्राप्त की, लेकिन अन्तिम सेलेक्शन नहीं होने से ये अपने संघर्षशील जीवन से भयभीत हो गये और अपने उथल-पुथल विचारों एवं भावों को लेकर सामाजिक व्यथा और सजगता पर लिखने की दिशा में आगे बढ़ते गये। परन्तु 'क्या गाऊँ, गा किसे सुनाऊँ' तक ही बात सिमट कर रह गई। फिर भी इनके प्रथम उपन्यास 'उपवास' साथियों के बीच काफी चर्चित रहा। इसके बाद 'दूसरी माँ', 'ज्योति', 'काला भवन' आदि साथी पाठकों के बीच तथा छोत्रों के बीच प्रशंसनीय उपन्यास रहें। सहयोग समय और सही दिशा-गाइड के अभाव में अप्रकाशित रह गये।

1993 ईस्वी में बि. लो. से. आयोग, पटना द्वारा चयनित शिक्षकों की सूची में इनका नाम भी आया, जो एक कठिन प्रतियोगिता थी। अब ये सहायक शिक्षक वा प्रधान शिक्षक के रूप में कार्यरत हो गये। इनका प्रथम योगदान सहायक शिक्षक के पद पर प्राथमिक विद्यालय तारापट्टी (अन्धराठाढ़ी) में हुआ। कुछ वर्षों के बाद स्थानान्तरित होकर उ.म. विद्यालय बसुआरा आ गये। इनकी अपनी अलग

शिक्षण-शैली और कार्य-शैली थी, जिससे सभी सन्तुष्ट रहते थे; विद्यालय में ये प्रधानाध्यापक होने के नाते हमेशा छात्र-छात्राओं के मनोबल को बढ़ाते रहते थे। ये सुयोग्य शिक्षक के रूप में विद्यालय में तथा विद्यालय से बाहर चर्चित रहें। विद्यालय में रहकर इन्होंने 'बालिका-शिक्षा' पर तथा 'सर्व-शिक्षा' पर विशेष ध्यान दिया। अभिभावक और बालिकाओं को शिक्षा की ओर उन्मुख होने के लिए समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया। इस कड़ी में दो प्रशंसनीय और प्रभावकारी स्वलिखित छात्र-नाटक 'संकल्प' और 'खजाना' का मंचन किया तथा शिक्षक की भूमिका स्वयं की।

सेवा के अन्तिम क्षण में इन्होंने घोघरडीहा प्रखण्ड के अधीनस्थ उत्क्रमित उच्च विद्यालय, बसुआरा से 2016 ईस्वी में प्रधानाध्यापक के रूप में अवकाश प्राप्त किया। सम्प्रति ये अवकाश प्राप्त शिक्षक रहते हुए भी शिक्षण कार्य हीं संचालित कर रहे हैं। ये पदमावती आर. पी. शैक्षणिक संस्था, निर्मली के निर्देशक भी हैं। समाज-चिन्तक के रूप में ये पिछड़े समाज को जगाने तथा लुढ़के समाज को उठाने के लिए तथा अति कमजोर छात्रों को समुचित दिशा दिखलाने एवम् सहयोग के लिए प्रगतिशील बौद्धिक समाज, निर्मली जैसे आदर्श संस्था चला रहे हैं जिसका प्रमुख संचालक भी हैं।

कविता, गीत, लेखन और रचना इनका शौक रहा है। महान रचनाकार मैथिली-शिल्पी एवम् अवार्डेड उपन्यासकार आरदणीय श्री जगदीश प्रसाद मण्डल जी के साथ साहित्य-जगत में विचरण कर रहे हैं। ये मैथिली में 'बौकी' उपन्यास और 'बगवार' काव्य-संग्रह पर कार्य कर रहे हैं।

अन्य-

कहानी संग्रह : 'झुन-झुन बेटी', 'अजूबा पेड़', 'वफादार कुत्ता'।

नाटक : 'संकल्प', 'खजाना', 'अछूत बेटी', 'गरीब पतोहु', 'सातवचन', 'सत्कार'।

संस्मरण : 'जयमाला मंच', 'मुशहरनिया का अतीत', 'मुंशी सुन्दर लाल मण्डल', 'ठूठा वरगद'।

गजेन्द्र ठाकुर : संक्षिप्त परिचय

श्री गजेन्द्र ठाकुर प्रसिद्ध लेखक एवम् 'विदेह' प्रथम मैथिली पाक्षिक ई पत्रिका (www.videha.co.in) के सम्पादक हैं। वे मैथिली साहित्य के विकास में सदैव दत्तचित्त होकर लगे रहते हैं। इनकी कलम मैथिली साहित्य के अनेक विधाओं में चलती रही हैं। मैथिली भाषा भारत के उत्तरी बिहार और नेपाल के दक्षिण-पूर्वी भागों में बोली जाती है। ये मैथिली लेखक-कोष निर्माता और विदेह (मिथिला) के इतिहास का ज्ञाता हैं। वे मैथिली भाषा के तिरहुती लिपि में तालपत्र-बसहा पत्र पर लिखा हुआ 11000 अभिलेखों का देवनागरी में लिप्यांतरण कर चुके हैं। ये सभी पञ्जिका मिथिला क्षेत्र के मैथिल ब्राह्मण समुदाय के आनुवंशिक लेख हैं और इसमें लगभग 100 अन्तर्जातीय विवाह भी लिखित रूप में वर्णित हैं। अभी तक पौराणिक समझे जाने वाले व्यक्तित्व के लिखित प्रमाण पहली बार इनमें उपलब्ध हुए हैं।

जीवनी : गजेन्द्र ठाकुर का जन्म बिहार के भागलपुर में 30 मार्च 1971 ई. में हुआ। पिता स्व. कृपा नन्द ठाकुर, माता- श्रीमती लक्ष्मी ठाकुर, मूल गांव- मेंहथ, भाया- झंझारपुर, जिला- मधुबनी (बिहार)

शिक्षा : एम.बी.ए. (फाइनेन्स), सी.आई.सी; सी.एल.डी., कोविद।

विदेह (पत्रिका) प्रधान सम्पादक सहित अनेकानेक वेबसाइट के संचालक और पथप्रदर्शक।

विशेष- इनकी चार मुख्य विषेषताएँ हैं-

1. ये मैथिली का प्रथम अरू जी हैं और

2. इनके माध्यम से मात्र बारह साल में कुल 350-400 नव लेखक और प्रसिद्ध लेखकगण आये।

अन्तर-महाविद्यालय क्रिकेट प्रतियोगिता में 'मैन ऑफ द सीरीज' (1991)।

सम्प्रति अमेच्योर गोल्फर

4. अन्तर्जाल के लिए तिरहुता और कैथी यूनीकोड के विकास में योगदान तथा मैथिली भाषा में अन्तर्जाल और संगणक की शब्दावली के विकास, मैथिली विकीपीडिया का संस्थापक। गूगल मैथिली ट्रान्सलेट में योगदान और शब्दकोष का वृहद संकलन तथा प्रकाशन। संस्कृत वीथी नाटक का निर्देशन और उसमें अभिनय।

5. ये एक साथ लेखक, कवि, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार, खिलाड़ी एवं प्रसिद्ध सम्पादक- बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हैं।

Notes

सन् सैंतालीस...

भारतक स्वतंत्र त्रिवार्णिक झण्डा फहरा रहल छल।

मुदा कम्यूनिस्ट पार्टीक माननाइ छल जे भारत स्वतंत्र नै भेल अछि।

असली स्वतंत्रता भेटब बाँकी छै...

मिथिलाक एकटा गाम...

जन्म भेल रहए एकटा बच्चाक... ओही बरख...

ओइ स्वतंत्र वा स्वतंत्र नै भेल भारतमे...

पिताक मृत्यु... गरीबी... केस मोकदमा...

वंचित लेल संघर्षमे भेटलै स्वतंत्र भारतक वा स्वतंत्र नै भेल भारतक जेल...

आइ बेरमामे पाँच-दस बीघासँ पैघ जोत केकरो नहि...

ओइ गाममे जीवित अछि आइयो किसानी आत्मनिर्भर संस्कृति...

पुरोहितवादपर ब्राह्मणवादक एकछत्र राज्यक जेतए भेल समाप्ति...

संघर्षक समाप्तिक पछाइत जिनकर लेखन मैथिली साहित्यमे

आनि देलक पुनर्जागरण...

मूल मैथिली पोथी "जगदीश प्रसाद मण्डल- एकटा बायोग्राफी" से उद्धृत...

जगदीश प्रसाद मण्डल : एक जीवनी (हिन्दी में) : रामेश्वर प्रसाद मण्डल

पल्लवी प्रकाशन


पल्लवी प्रकाशन
जे.एल.नेहरू मार्ग, तुलसी भवन
निर्मली, सुपौल, बिहार : 847452

मूल्य- 251/-

ISBN: 978-93-93135-40-7
